• वर्ष ६६ • अंक १३ • मूल्य ₹ २०

जुलाई (प्रथम) २०२४

पाक्षिक परोपकारी

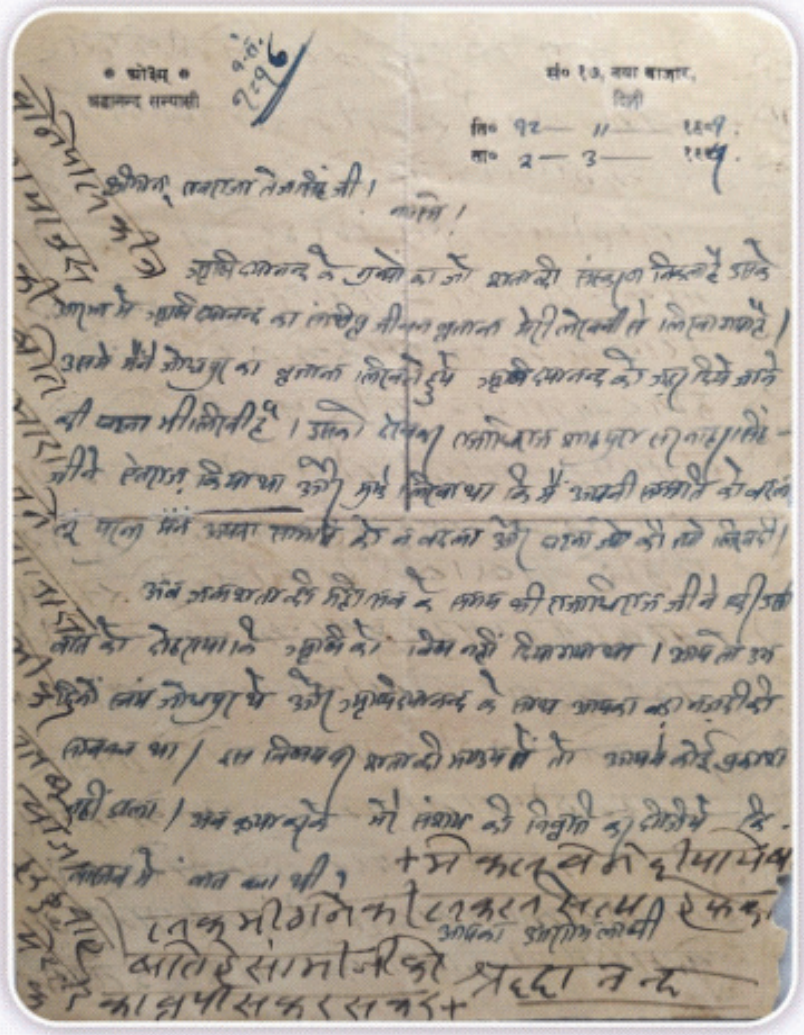

रावराजा तेजसिंह के नाम स्वामी श्रद्धानन्द का पत्र

इतिहास के हस्ताक्षर

ऋषि उद्यान, अजमेर में परोपकारिणी सभा की ओर से आयोजित 'योग-ध्यान-स्वाध्याय शिविर' के प्रतिभागियों, प्रशिक्षक आचार्यों एवं सभा के पदाधिकारियों का सामूहिक चित्र।

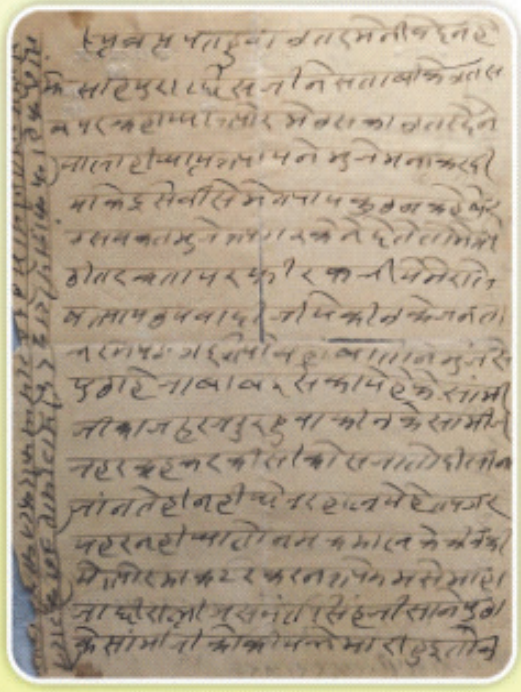

स्वामी श्रद्धानन्द को राव राजा तेजसिंह का जवाब

पत्र प्राप्त हुआ, उत्तर में निवेदन कि शाहपुराधीश जी ने शताब्दी के उत्सव पर कहा था और मैं उसका उत्तर देने वाला ही था, पर आपने कुझे मना कर दिया कि इस विषय में आपसे कुछ न कहें। खैर उस वक्त मुझे अगर कहने देते तो मैं अच्छी तरह कहता, पर फिर कभी ये मेरा लेख आप छपवा दीजिये, क्योंकि जनता भ्रम में पड़ गई थी, आपने यह बताने मुझसे पूछा है, जवाब इसका यह है कि स्वामी जी को जहर जरूर हुआ है, क्योंकि स्वामी जी जहर कहकर किसी को सजा तो दिलाना जानते ही नहीं थे। पर हाल यह है कि अगर जहर नहीं था तो नमक डाल के कै क्यों किये और डॉक्टर कर्नल एडम से महाराजधिराज श्री जसवन्त जी सा ने पूछा कि स्वामी जी को क्या बीमारी हुई तो उन्होंने कहा कि काँच पीस कर दिया गया है, उनके गले में और आंतडियों में छेद हो गये थे, फिर कलवा क्यों भागा, वो नेपाल क्यों गया, उसकी बहुत महाराज ने तलाश भी की, अब वो जाहर हुआ है, ये सारी कलंक मिटाने की बातें हैं। स्वामी जी को कांच पीसकर शक्कर में कलवे ने दिया, ये बिल्कुल सत्य है फक्त।

प्रस्तुति : आचार्य विरजानन्द दैवकरणि

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६६ अंक : १३

दयानन्दाब्द: २००

विक्रम संवत् - आषाढ़ कृष्ण २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक- डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
८२०९५८६१६६

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जुलाई प्रथम, २०२४

अनुक्रम

०१. वर्तमान परिदृश्य - ???	सम्पादकीय	०४
* प्रवेश सूचना		०५
०२. पाठकों की प्रतिक्रिया	शशिप्रभा कुमार	०५
०३. कर्म-सामर्थ्य और प्रदर्शन...	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	०६
०४. आर्यों की शान क्या निराली थी!(२)	प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१६
०५. निवेदन		२०
०६. दुःखों के कारण	पण्डित रघुनन्दन शर्मा	२१
०७. मोक्ष और उसका प्राप्ति के साधन	पं. बालकृष्ण शर्मा	२७
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३३
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

वर्तमान परिदृश्य - ???

विगत दो-तीन महीनों में कुछ घटनाएं इस प्रकार की घटित हुईं, जिन्हें पढ़कर छोड़ना - भूल जाना सम्भव नहीं हो सका। ये घटनाएं व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी इनका प्रभाव न केवल दूरगामी होगा, अपितु ये मानवता को न केवल शर्मसार अपितु कलंकित करने वाली हैं। यदि इन पर विचार कर इनकी पुनरावृत्ति रोकने के लिए कोई उपाय न किए गए तो ये भविष्य के लिए किस प्रकार चुनौतियां खड़ी कर देंगी, यह सोचकर ही संवेदनशील व्यक्ति का व्यग्र हो जाना स्वाभाविक ही है। क्योंकि इनके पश्चात् हुई प्रतिक्रिया इतनी कमाजेर अथवा न होने जैसी रही, जो किसी भी सभ्य समाज के लिए बहुत ही दु:खद होने वाली है-

१. सड़क पर वाहनों की भीड़ और गति की तीव्रता के कारण दुर्घटनाएं होती रहती हैं। घटना के पश्चात् आरोपित वाहन चालक का व्यवहार भी घटना के सन्दर्भ में कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानना चाहिए। अभी कुछ दिन पूर्व पुणे में एक कार दुर्घटना हुई। इसमें चालक नाबालिग था। स्वाभाविक है कि उसके पास ड्राईविंग लाइसेन्स भी नहीं था। कार भी महंगी पोर्शे थी। पुलिस जांच के साक्ष्यों के अनुसार आरोपित युवक ने अपने मित्रों के साथ बैठकर किसी बार (वीडियो फुटेज भी सोशल मीडिया पर दिखाई जा रही थी।) में शराब पी थी। इसके बाद नशे में कार को तीव्र गति से सड़क पर दौड़ाते समय दो इंजीनियरों को रौंद दिया। इस प्रकार के युवा प्राय: धनी परिवार से सम्बद्ध होने के कारण नियम कानून को तुच्छ मानकर प्रायश्चित्त भाव से दूर ही रहते हैं। पूर्व घटित घटनाएं भी इसकी साक्षी हैं।

सड़क पर दुर्घटनाओं को स्यात् पूरी तरह रोकना बहुत ही कठिन हो, उक्त घटना में शराब के नशे में ड्राईव करने की जांच के लिए जो रक्त का नमूना लिया गया था, उसे लैब में बदल कर उसके स्थान पर किसी अन्य के रक्त की जांच रिपोर्ट बना देना क्या घटित घटना से कमतर मानी जा सकती है? चालक तो शराब के नशे में था, किन्तु डॉक्टर व लैब तकनीशियन ने क्या किया? यद्यपि दो डॉक्टर तथा एक सहायक के निलम्बन का समाचार है। नौकरी से निलम्बन तो वैसे भी दण्ड नहीं माना जाता। क्या वर्तमान व्यवस्था में यह विश्वास किया जा सकता है कि इन्हें भी सह आरोपी मानकर कठोर दण्ड से दण्डित किया जा सकेगा? यदि नहीं, तो क्या इस प्रकार की पुनरावृत्ति रोकी जा सकती है?

इस अपराध के सन्दर्भ में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य भी ध्यान में देने योग्य है कि न्यायाधीश द्वारा आरोपी को निबन्ध लिखने के लिये कहना और उसे जमानत पर रिहा करना, क्या यह व्यवहार किसी भी प्रकार से घटना को दृष्टिगत करते हुए उचित कहा जा सकता है? साथ ही १५-१८ वर्ष के युवाओं को भी इस प्रकार के अपराध में लिप्त होने पर जुवेनाइल एक्ट के लाभ से वंचित कर दण्डित किया जाना सम्भव है? यदि नहीं, तो इस प्रकार के अपराध रोकना असम्भव ही होगा।

परिवहन मन्त्रालय द्वारा प्रस्तावित कठोर कानून (जिन्हें वाहन चालकों तथा ट्रांसपोर्टर्स के विरोध के चलते स्थगित कर दिया गया है।) क्या अपरिहार्य नहीं है?

२. दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना है- बांग्ला सांसद अनवारुल अजीम को हनी ट्रैप में फंसाकर कोलकाता में उनकी हत्या। प्रकाशित समाचारों के अनुसार हत्या का तरीका, जिसमें हत्याकर शरीर की चमड़ी उतार कर मांस को अलग करना तथा मांस व हड्डियों के छोटे-छोटे टुकड़े कर उसमें नमक व हल्दी मिलाकर, पैक कर पहले फ्रीजर में रखना बाद में नष्ट करने की दृष्टि से सेफ्टी टेंक तथा किसी अन्य जलाशय में फैंकना।

आवेश में हत्या करना और इस प्रकार हत्या दोनों हत्या होते हुए भी समान नही हैं। इस प्रकरण में पूर्व में

श्रद्धा की हत्या के पश्चात् उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करने की घटना को स्मृति पटल पर उपस्थित कर दिया है।

इस प्रकार की हत्याओं में अपनाया गया तरीका हत्यारों की जिस मानसिकता को प्रकट कर रहा है, उस मानसिकता को उसकी निन्दा अथवा हत्यारों को दण्ड देने भर से समाप्त किया जा सकेगा, ऐसा सोचना दिवा स्वप्न से अधिक नहीं है। हत्या के समय इस या इसी प्रकार के तरीके इस्तेमाल करने वाले किस संस्कृति (यद्यपि उसे संस्कृति कहना ही संस्कृति शब्द और उसके अर्थ का तिरस्कार करना है।) से संस्कारित हैं? क्या इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए? यद्यपि अभी तक की प्रतिक्रिया निराशाजनक ही हैं।

३. तीसरी महत्त्वपूर्ण घटना उत्तर प्रदेश के जिला-मुजफ्फरनगर के ग्राम 'फुलत' में स्थित प्राइवेट स्कूल की है। इसमें पढ़ने वाले छात्र के पास उसका एक (हिन्दू) मित्र आया। संस्था के संचालकों को दूसरे धर्म के छात्र का हॉस्टल में आना इतना नागवार गुजरा कि उन्होंने अपने छात्र को ही निलम्बित कर दिया है।

धार्मिक सहिष्णुता का राग अलापने वाले इस पर पूर्णत: मौन हैं। विचारणीय तो यह है कि यदि इस प्रकार की असहिष्णुता/धार्मिक विद्वेष की वृत्ति को विद्यार्थी के अध्ययन काल में ही उनके अन्दर भर दिया जाएगा, तो क्या वह उम्र भर किसी के साथ सौहार्द का व्यवहार कर सकेगा? शिष्ट नागरिक बनाने तथा उनके सहअस्तित्वपूर्ण व्यवहार की दृष्टि से इस प्रकार के स्कूलों पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। शुतुरमुर्ग की तरह आंख बन्द कर लेने मात्र से समाधान सम्भव नहीं है।

वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में उक्त घटनाएं यह संकेत करने के लिए पर्याप्त हैं कि मानव समाज किधर जा रहा है? किसी एक पर दोषारोपण की अपेक्षा ये घटनाएं गहन चिन्तन का प्रसंग उपस्थित कर रही हैं। बहुत देर तो हो ही चुकी है। यदि अब भी सम्भलने के प्रयास न हुए तो स्थिति की भयावहता से बचना असम्भव होगा।

- डॉ. वेदपाल

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की नि:शुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्र: ८८९०३१६९६१**

प्रधान ९९५०९९९६७९

मन्त्री ९९१११९७०७३

पाठकों की प्रतिक्रिया

नमस्ते भाई साहब। अभी-अभी परोपकारी का मई द्वितीय अंक हस्तगत हुआ, आपका सम्पादकीय लेख 'अजनबी' पढ़ कर आँखों में आँसू आ गये। सादर,

शशिप्रभा कुमार, अध्यक्षा, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला

२३-०५-२०२४

कर्म-सामर्थ्य और प्रदर्शन-सामर्थ्य दोनों आवश्यक

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी),
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–वायुः, +सविता, छन्दः–स्वराड् ब्राह्मीत्रिष्टुप् (६६+२), +विराड् गायत्री (२४-२), स्वरः–धैवतः, +षड्जः]

विषयः– पुनः स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते ॥

(उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है, इस विषय का उपदेश प्रस्तुत मन्त्र में किया गया है॥)

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽ[1] इषमूर्जमा वद[2] त्वया वयꣳ संघातꣳसंघातं जेष्म[3] वर्षवृद्धमसि[4] प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु[5] परापूतꣳ रक्षः[6] परापूता अरातयो[7]ऽपहतꣳ रक्षो[8] वायुर्वो वि विनक्तु[9] +देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना[10] ॥ –यजु० १.१६ ॥

[अनु०-३, नि०-२२, उ०-२४, स्व०-२०, प्र०-२१ = ९० अक्ष०, क०मं०-७, पा०-१०]

पदपाठः– **कुक्कुटः । असि ।** मधुजिह्वऽ इति मधुऽ जिह्वः ।[1] **इषम् । ऊर्जम् । आ । वद ।**[2] **त्वया । वयम् ।** संघातꣳसंघातमिति संघातम्ऽ संघातम् । **जेष्म ।**[3] वर्षवृद्धमिति वर्षऽ वृद्धम् । **असि ।**[4] **प्रति । त्वा ।** वर्षवृद्धमिति वर्षऽ वृद्धम् । **वेत्तु ।**[5] परापूतमिति पराऽ पूतम् । **रक्षः ।**[6] परापूताऽ इति पराऽ पूताः । **अरातयः ।**[7] अपहतमित्यपऽ हतम् । **रक्षः ।**[8] **वायुः । वः । वि । विनक्तु ।**[9] **देवः । वः । सविता ।** हिरण्यपाणिरिति हिरण्यऽ पाणिः । **प्रति । गृभ्णातु । अच्छिद्रेण । पाणिना**[10] ॥ **१६** ॥

[अनु०-२२, नि०-२४, उ०-४१, स्व०-२९, प्र०-२७ = १४३ अक्ष०, अव०प०-८, ग०प०-०, स०प०-३५]

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
कुक्कुटः	कुकं परद्रव्यादातारं चोरं शत्रुं वा कुटति येन स यज्ञः॥	हे यज्ञस्वरूप परमेश्वर आप कुक्कुट अर्थात् परिश्रम द्वारा अर्जित दूसरों के धन का अपहरण करने वालों के लिए यथायोग्य दण्ड का विधान करने वाले
असि	अस्ति॥ अत्र सर्वत्र व्यत्ययः॥	हैं।
मधुजिह्वः	मधुरगुणयुक्ता जिह्वा ज्वाला प्रयुज्यते यस्मिन् सः॥	आपकी पवित्र वेदवाणी सर्वमङ्गल के माधुर्य से परिपूर्ण है।

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
इषम्	अन्नादिपदार्थसमूहम् इषमित्यन्नानामसु पठितम्॥ (निघं०१ ।७)॥	आप दैनिक जीवन की आधारभूत सुविधाओं में सहायक अन्नादि पदार्थों को
ऊर्जम्	विद्यादिपराक्रममनुत्तमरसं वा॥	जो विद्यादि पराक्रम के प्रदान करने वाले तथा उत्तमोत्तम रस से परिपूर्ण हों, उन्हें प्राप्त करने के लिए
आ	क्रियायोगे॥	
वद	उपदिश॥	अपना करुणामय मार्गदर्शन कीजिए।
त्वया	परमेश्वरेण विदुषा वीरेण वा सह सङ्गत्य॥	तुझ परमेश्वर के साहाय्य से
वयम्		हम लोग
संघातंसंघातम्	सम्यग्घन्यन्ते जना यस्मिन् तं संग्रामम्॥ संघात इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२ ।१७) अत्र वीप्सायां द्विरुक्तिः॥	जीवन के संघर्ष/संग्राम को
जेष्म	जयेम॥ अत्र लिङर्थे लुङ्। अड्वृद्ध्य-भावश्च॥	जीतने में समर्थ हों।
वर्षवृद्धम्	शस्त्रास्त्राणां वर्धयितारम्॥	आप संघर्ष के सामर्थ्य को बढ़ाने वाले तथा अन्नादि की वृद्धि में सहायक वर्षा को बढ़ाने वाले यज्ञ का विधान करने वाले
असि	भवति॥	हैं।
त्वा	त्वां तं यज्ञं वा॥	आप अपने
वर्षवृद्धम्	वृष्टेर्वर्धकं यज्ञम्॥	वर्षवृद्ध स्वरूप का
प्रति	क्रियायोगे॥	
वेत्तु	जानातु॥	बोध करवाइए।
रक्षः	दुष्टस्वभावो मूर्खः॥	आपकी संगति और आपके मार्गदर्शन से मन वचन और कर्म से सामर्थ्यवान् हम उपासकों के समक्ष दुष्ट स्वभाववाले लोग
परापूतम्	परागतं पूतं पवित्रत्वं यस्मात् तत्॥	पराजित हो गए हैं।

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
अरातयः	परपदार्थगृहीतारः शत्रवः॥	दूसरों के पदार्थों का अपहरण करनेवाले शत्रुतुल्य लोग
परापूताः	परागतः पूतः पवित्रस्वभावो येभ्यस्ते॥	पराभव को प्राप्त हो गए हैं।
रक्षः	दस्युस्वभावः॥	चोरवृत्ति और राक्षसबुद्धि वाले लोग
अपहतम्	अपहन्यते यत् तत्॥	स्वयं ही नष्ट हो गए हैं।
वायुः	योऽयं भौतिको वाति॥	आपके सामर्थ्य से सार्थ्यवान् यह भौतिक वायु जिस प्रकार
वः	तान् हुतान् परमाणुजलादिपदार्थान्॥	इस भौतिक यज्ञ में आहुत किए गए पदार्थों को
वि	विशेषार्थे॥	विशेष रूप से
विनक्तु	वेचयति वेचयतु वा॥ अत्राद्ये पक्षे लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थश्च॥	अणु-परमाणुओं में विभक्त करता है; उसी प्रकार हम भी अपने यज्ञिय व्यवहार में अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, ग्राह्य-अग्राह्य आदि का विवेचन करते रहें।
वः	युष्मान्॥	हे परमेश्वर ! भौतिक यज्ञ में आपको आहुति रूप में समर्पित पदार्थों को, जो अग्नि और वायु के संयोग से अणु-परमाणुओं में विभक्त हो गए है; उन्हें
देवः	प्रकाशस्वरूपः॥	प्रकाशस्वरूप,
सविता	वृष्टिप्रकाशद्वारा दिव्यगुणानां प्रसवहेतुः॥	वृष्टि और प्रकाश द्वारा दिव्य गुणों की उत्पत्ति का हेतु,
हिरण्यपाणिः	हिरण्यं ज्योतिः पाणिर्हस्तः किरण-व्यवहारो वा यस्य सः॥ ज्योतिर्हि हिरण्यम्। (शत०४।३।१।२१)॥	स्वर्णिम किरण रूप हाथों वाला यह सूर्य
अच्छिद्रेण	छिद्ररहितेनैकरसेन॥	अपने निरन्तर बह रहे
पाणिना	किरणसमूहेन व्यवहारेण॥	किरण समूह से
प्रति	क्रियायोगे॥	हमें पुनः पुनः

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
गृभ्णातु	प्रतिगृह्णाति॥ अत्र हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्य भत्वं वक्तव्यम्। (अष्टा०८ ।२ ।३२) इति हकारस्य स्थाने भकारः लडर्थे लोट् च॥ अयं मन्त्रः। (शत०१ ।१ ।४ ।१८-२४) व्याख्यातः॥ १६॥	जीवनोपयोगी विविध पदार्थों के रूप में प्राप्त कराए।

तत्त्वबोध–

१. अत्र श्लेषालङ्कारः[१] **–** महर्षि दयानन्द ने प्रस्तुत मन्त्र में श्लेष अलंकार मानते हुए इस मन्त्र का ईश्वर परक तथा वीरपुरुष परक अर्थ किया है। दोनों का संबन्ध यज्ञ से है। परमात्मा सृष्टि-यज्ञ का अधिष्ठाता है और वीर मनुष्यों के द्वारा जो लोककल्याण के लिए अग्निहोत्र आदि श्रेष्ठ कार्य किए जाते हैं उनका यथोचित फल देनेवाला है।

२. कुक्कुटः[२] **, असि**[३] **–** कुक्कुट का अर्थ है दूसरों के द्रव्य का अपहरण करनेवाले को यथोचित दण्ड देनेवाला। ईश्वर के प्रसंग में यह कर्म-फल व्यस्था का अंग बन जाता है। वीरपुरुष के प्रसंग में यह राज-व्यस्था का अंग बन जाता है। इस प्रकार ईश्वर और राजा दोनों ही 'कुक्कुट' हैं, एक का कार्यक्षेत्र अनन्त है तो दूसरे का कार्यक्षेत्र उसके अपने राज्य की सीमाएँ हैं।

३. मधुजिह्वः[४] **(असि) –** परम्परा में

---

१. द्र० – प्रस्तुत मन्त्र के संस्कृत भावार्थ का प्रथम वाक्य।

२. कुक आदाने (भ्वादिगणः, आत्मनेपदी) इति धातोः 'सम्पदादित्वात् क्विप्' (अष्टा० ३.३.१०८ भा० वा०) इति क्विप्-प्रत्ययः, तस्य सर्वापहारिलोपश्च, धातुस्वरेणाद्युदात्तः 'कुक्' प्रातिपदिकः॥ कुकं कुटतीति कुक्कुटः॥ कुट कौटिल्ये (तुदादिगणः, परस्मैपदी) इत्यस्मात् 'कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्' (अष्टा० ३.२.५ भा० वा०) इति क-प्रत्ययः, कित्वादुपधागुणाभावः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'कुट' प्रातिपदिकः॥ उपपदसमासः, 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अष्टा० ६.२.१३९) इति प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम्, पुंसि प्रथमैकवचने– 'कुक्कुटः'॥ यद्वा लकुटमकुटकुक्कुटादयः (भोज उणादि २.२.१०६) इति 'उटच्' प्रत्ययान्तो निपात्यते ।'चितः' (अष्टा० ८६.१.१६३) इति प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः॥

३. अस् भुवि (अदादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोर्लटि मध्यमपुरुषैकवचने सिप्-प्रत्ययः – अस् + सिप्। 'कर्तरि शप्' (अष्टा० ३.१.६८) इति शप्, तस्य च 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (अष्टा० २.४.७२) इति लुक् – अस् + सि। 'तासस्त्योर्लोपः' (अष्टा० ७.४.५०) इत्यस्-धातोः सकारस्य लोपः – असि। सिपः पित्त्वात् सिप्-प्रत्ययोऽनुदात्तः, अतः धातुस्वरेणैवाद्युदात्तत्वम्, ततः स्वरितत्वं च – असि। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'असि'॥

४. 'मन ज्ञाने' (दिवादिगणः आत्मनेपदी) 'फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतश्च' (उणा० १.१८) इति 'उ' प्रत्ययः, ध्-अन्तादेशश्च, स च नित्वादाद्युदात्तः– 'मधु'॥ जयति यया सा जिह्वा। जि जये (भ्वादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोः 'शेवयह्वजिह्वाग्रीवाप्वामीवाः' (उणा० १.१५०) इति वन्-प्रत्ययान्तो निपातितः, धातोरुहुक्-आगमः, स्त्रियां टाप्, नित्वादाद्युदात्तस्वरः– 'जिह्वा'॥ मधुरगुणयुक्ता जिह्वा ज्वाला प्रयुज्यते यस्मिन् सः। बहुव्रीहिसमासः। 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' (अष्टा० ६.२.१) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वे पूर्वपदाद्युदात्तत्वम्, पुंसि प्रथमैकवचने – 'मधुजिह्वः'॥

वेद ईश्वरीय वाणी है, माधुर्य अर्थात् लोकहित के भावों से पूर्ण है। राजा का आदेश भी मधुर है, जो कभी-कभी कठोर प्रतीत अवश्य होता है परन्तु परिणाम में समग्र प्रजा में राज-व्यवस्था का विधायक और प्रजा का हितकारक ही होता है। इस प्रकार ईश्वर और राजा दोनों 'मधुजिह्व' हैं।

४. इषम्[५], ऊर्जम्[६], आ[७], वद[८] – उपासक की ईश्वर और राजा दोनों से कामना है कि वे उसका मार्गदर्शन करें; जिससे वह अपने जीवन यापन के लिए ऊर्जा = बल प्रदान करनेवाले आवश्यक अन्न आदि की प्राप्ति के लिए सही दिशा में पुरुषार्थ करता रहे।

५. त्वया[९], वयम्[१०], संघातꣳसंघातम्[११], जेष्म[१२] – उपासक की यह भी कामना है कि जीवन-संग्राम में सदैव विजयी रहे, कभी निराशा और हताशा उसे विचलित न कर पाएँ। इसी लिए

---

५. इषु इच्छायाम् (तुदादिगणः, परस्मैपदी), इष गतौ (दिवादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोः 'क्विप् च' (अष्टा० ३.२.७६) इति क्विप्, क्विपः सर्वापहारिलोपः, 'धातोः' (अष्टा० ६.१.१६२) इति धातुस्वरेण 'इषु'-प्रातिपदिकमन्तोदात्तम्। नपुंसके द्वितीयैकवचने = इषु + अम्। विभक्तेरनुदात्तत्वम्, तस्य चोदात्ताश्रितस्वरिते = इषम्।

६. ऊर्ज बलप्राणनयोः (चुरादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोः 'क्विप् च' (अष्टा० ३.२.७६) इति क्विप्, क्विपः सर्वापहारिलोपः, 'धातोः' (अष्टा० ६.१.१६२) इति धातुस्वरेण 'ऊर्जु'-प्रातिपदिकमन्तोदात्तम्। द्वितीयैकवचने = ऊर्ज् + अम् = ऊर्जम्, 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (अष्टा० ३.१.४), इति विभक्तेरनुदात्तत्वम्, 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'(अष्टा० ८.४.६६) इतीकारादुत्तरस्यानुदात्तस्य स्वरितः = ऊर्जम्।

७. 'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्, यद्वा 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' इत्यनेनाद्युदात्तत्वम्।

८. वद व्यक्तायां वाचि (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः लोटि मध्यमपुरुषैकवचने सिप्-शपौ, तौ चानुदात्तौ– वद् +शप्+ सिप्। 'सेर्ह्यपिच्च' (अष्टा० ३.४.८७) इति सेर्हि-आदेशः – वद् +अ + हि। 'अतो हेः' (अष्टा० ६.४.१०५) इति हेर्लोपः – वद। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (अष्टा० ६.१.१५७) इति 'द' इत्यस्यानुदात्तम्, – 'वद'। उदात्तात् परस्य स्वरितः –'वद'। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वे –'वद'॥

९. युष्मद्+टा। 'त्वमावेकवचने' (अष्टा० ७.२.९७) इति युष्म्-स्थाने त्वादेशः–त्व+अद्+आ। 'अतो गुणे' (अष्टा० ७.२.९७) इति पररूपैकादेशः– त्वद्+आ। 'योऽचि' (अष्टा० ६.१.९७) इति यकारादेशः–त्वया। प्रातिपदिक-स्वरेणाद्युदात्तः– त्वया॥

१०. युष सेवने (सौत्रः) इति धातोः 'युष्यसिभ्यां मदिक्' (उणा० १.१३९) इति मदिक्-प्रत्ययः। प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः–'अस्मत्' शब्दः। अस्मद्+जस्। 'यूयवयौ जसि' (अष्टा० ७.२.९३) इति अस्म्-स्थाने वयादेशः– वय्+ अद्+जस्। 'शेषे लोपः' (अष्टा० ७.२.९०) इति अद्-भागस्य लोपः– वयम्। 'ङे प्रथमयोरम्' (अष्टा० ७.१.२८) इति जस्-स्थाने अमादेशः, स चानुदात्तः–अस्मद्+अम्। 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' (अष्टा० ६.१.२७) इत्यन्तोदात्तत्वम्– वयम्। अत्र उदात्तलोपत्वात् 'अ' अनुदात्तस्यैव उदात्तत्वं भवति॥

११. सम्+हन्+घञ्। 'सम्'– 'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्– सम्॥ हन हिंसागत्योः (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'भावे' (अष्टा० ३.३.१८), इति भावे घञ्-प्रत्ययः – हन् + घञ् । 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (अष्टा० ७.३.५४), इत्यनेन ञित्-प्रत्यये परे हन्-इत्यस्य हकारस्य घकारादेशः – घन् + अ। 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (अष्टा० ७.३.३२), इति नकारस्य तकारः – घत् + अ। 'अतः उपधायाः' (अष्टा० ७.२.११६), इति उपधायाः अकारस्य दीर्घः – घात् + अ = घात। घञो नित्त्वात् 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७)इत्यनेन प्राप्तमाद्युदात्तत्वं प्रतिषिध्य 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' (अष्टा० ६.१.१५९) इत्यन्तोदात्तः – 'घात' प्रातिपदिकः॥ सम्यग्घन्यन्ते यस्मिन्निति । गतितत्पुरुषसमासः। 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अष्टा० ६.२.१३९)

वह दोनों की संगति चाहता है, आश्रय की कामना रखता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि हमारी राजव्यवस्थाएँ ऐसी होनी चाहिएँ जिसमें कृषि, व्यापार, उद्योग आदि संचालित करने में प्रजा का उत्साह सदैव बना रहे जिससे प्रजा का जीवन सुखमय हो और राज्य भी निरन्तर उन्नति करता रहे। **'उत्हासनाशे बुद्धिनाशः'** – उत्साह के नष्ट होते ही बुद्धि नष्ट हो जाती, विवेक मर जाता है। परिणामतः हताश मनुष्य आत्महत्या तक के अपराध कर बैठता है। सदैव आशावान् बने रहना ईश्वर उपासना का अन्यतम फल है। राजा का भी यही कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा के उत्साह को सदैव बनाए रखे।

६. वर्षवृद्धम्[१३], असि – परमात्मा वर्षवृद्ध है; क्योंकि वह जीवन-संग्राम में विजयी बने रहने के लिए हमारे उत्साह को बढ़ानेवाला है। वह अभीष्ट वर्षा के द्वारा अन्न आदि को भी बढ़ानेवाला है। राजा का कर्तव्य भी यही है कि वह अपने राज्य में लोक-कल्याणकारी योजनाओं की वर्षा करता रहे, जिससे प्रजा का उत्साह निरन्तर बढ़ता रहे।

७. त्वा[१४], वर्षवृद्धम्, प्रति[१५], वेत्तु[१६] – ईश्वर वर्षवृद्ध है, हमारा राजा वर्षवृद्ध है यह भाव उपासक और प्रजा दोनों में दृढ़ हो। जिस प्रकार समय-समय पर वर्षा आदि के द्वारा परमेश्वर अपने वर्षवृद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राणिमात्र को करवाता रहता है; उसी प्रकार राजा का भी यह कर्तव्य है कि वह

इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वेन 'त'-उदात्तः, पुंसि द्वितीयैकवचने–'संघातम्'॥ अत्र वीप्सायां द्विरुक्तिः, पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण संहितास्वरेण च– 'संघातꣳसंघातम्'॥

१२. जि जये (भ्वादिगणः, परस्मैपदी) लुङ्लकारः, उत्तमपुरुषबहुवचनम्– जि + मस्। 'च्लि लुङि' (अष्टा० ३.१.४३) इति च्लिः – जि + च्लि+ मस्। 'च्लेः सिच्' (अष्टा० ३.१.४४) इति च्लेः स्थाने मस्-आदेशः – जि + सिच् + मस्। 'नित्यं ङितः' (अष्टा० ३.४.९९) इति मसः सलोपः – जि + स् + म। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (अष्टा० ३६.४.७१) इत्यडागमप्राप्तेः छान्दसाभावः, एवमेव 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (अष्टा० ७.२.१) इति वृद्धिप्राप्तेः छान्दसाभावश्च, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (अष्टा० ७.३.८४) इति गुणादेशः– जे + स् + म। 'आदेशप्रत्यययोः' (अष्टा०८.३.५९) इति षत्वे– जेष्म। अडागमाभावे 'आदिः सिचोऽन्यतरस्याम्' (अष्टा०८.३.५९) इति आदेरुदात्तः विकल्पेन– जेष्म। पक्षान्तरे सिचः चित्त्वादन्तोदात्तः–जेष्म। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वे –'जेष्म'॥

१३. वर्ष स्नेहने (भ्वादिगणः आत्मनेपदी) इत्यस्मात् 'कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्' (अष्टा० ३.२.५ भा० वा०) इति क-प्रत्ययः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'वर्ष' प्रातिपदिकः॥ वृधु वृद्धौ (भ्वादिगणः, आत्मनेपदी) इति धातोः क्त-प्रत्ययः– वृध्+क्त। 'झषस्तथोर्धोऽधः'(अष्टा० ८.२.४०) इति धकारात् परस्य तकारस्य धकारः– वृध्+ध। 'झलां जश् झशि'(अष्टा० ८.४.५३) इति पूर्वधकारस्य दकारः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'वृद्ध' प्रातिपदिकः॥ वर्षं वृष्टिं वर्धयतीति वर्षवृद्धस्तम्। उपपदसमासः। 'पूर्वपदान्तोदात्त प्रकरणे मरुद्वृधादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्' (अष्टा० ६.२.१९९ वा०) इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्, पुंसि द्वितीयैकवचने– 'वर्षवृद्धम्'॥ यद्वापरावग्रहे वर्षेण वृद्धं वर्षवृद्धम्, अत्र पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वे 'वर्ष' शब्दः पचाद्यन्तोदात्तः॥

१४. 'त्वाम्' इति स्थाने प्रयुक्तम्, 'त्वामौ द्वितीयायाः' (अष्टा० ८.१.२३), 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' (अष्टा०८.१.१८) इत्यतः सर्वानुदात्तत्वमनुवर्तते– 'त्वा'।

१५. 'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्, यद्वा 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' इत्यनेनाद्युदात्तत्वम्। तदुत्तरस्य स्वरितश्च – 'प्रति'॥

१६. विद् ज्ञाने (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोर्लोटि प्रथमपुरुषैकवचने तिप्-शपौ, पित्त्वादनुदात्तौ, शपो लुक्, 'एरुः' (अष्टा० ३.४.८६) इत्युत्वम्– विद् + तु। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (अष्टा० ७.३.८६) इत्युपधायाः गुणः,

पहुँचाए। ऐसा करने से राजा के वर्षवृद्ध स्वरूप का ज्ञान जब प्रजा को होगा तो वह अपने राजा पर और अधिक श्रद्धावान् तथा विश्वास करनेवाली होगी। ऐसे राजा का राज्य ही चिरस्थायी होता है। दूसरे शब्दों में राजा का अपनी प्रजा के प्रति हितकारी होना ही आवश्यक नहीं अपितु यह हितकारिता प्रजा को दिखनी भी चाहिए। ईमानदार होना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक ईमानदार दिखना भी है। इसके बिना न विश्वास होता है, न विकास होता है। लोककल्याण का दिखावा मात्र करने वाले का राजा का पतन अतिशीघ्र और अवश्यंभावी होता है। केवल लोककल्याण की योजनाएँ देनेवाला राजा भी उसी प्रकार प्रजा में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करता जैसे ज्ञान से समृद्ध कोई शिक्षक अपने ज्ञान को छात्रों तक पहुँचाने की कला में निपुण न होने के कारण छात्रों में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होता। अतः कर्म-सामर्थ्य और प्रदर्शन-सामर्थ्य दोनों के होने पर ही चिरस्थायी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। वर्षवृद्ध होने तथा वर्षवृद्ध होने की जानकारी लाभार्थी प्रजाजनों/उपासकों तक पहुँचाने का यही तात्पर्य है।

८. रक्षः[१७]**, परापूतम्**[१८] — ईश्वर के आश्रय में स्वयं को अनुभव करनेवाला उपासक अपने आपको अद्भुत आत्मिक तथा शरीरिक बल से सम्पन्न पाता है। वह प्रतिक्षण उत्साह से भरा रहता है। उसके इस अदम्य उत्साह को देखकर उसकी अपनी राक्षसीवृत्ति की निवृत्ति तो होती ही है; समाज में पाए जानेवाले राक्षसवृत्ति लोग भी उनके तेज के सामने ठहर नहीं पाते, वे स्वयं उनके सामने पराजित हुआ सा अनुभव करते हैं। समर्थ राजा के राज्य में सुरक्षा व्यवस्था के सुदृढ़ होने के कारण उसकी प्रजा स्वयं को सुरक्षित अनुभव करती है। विघटनकारी गुण्डातत्व छिपकर रहने में ही अपनी भलाई समझता है। जब लम्बे समय तक किसी राज्य में यह सुरक्षा-व्यवस्था चलती है तो वे विघटनकारी भी अपनी गुण्डई छोड़कर सभ्य समाज की मुख्यधारा में जुड़ना आरम्भ कर देते हैं।

९. अरातयः[१९]**, परापूताः**[२०] — अदानशील,

'खरि च' (अष्टा० ८.४.५५) इति चर्त्वम्, धातुस्वरेणाद्युदात्तत्वम्, तदुत्तरस्य स्वरितत्वं च– 'वेत्तु'॥ संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'वेत्तु' ॥

१७. रक्ष पालने(भ्वादिः परस्मैपदी) इति धातोः 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' (उणा० ४.१८९) इति बाहुलकाद् 'भीमादयोऽपादाने' (अष्टा० ३.४.७४) इत्यपादानेऽसुन् प्रत्ययः, अत्र च प्रमाणम् –रक्षो, रक्षितव्यमस्माद्, रहसि क्षणोतीति वा, रात्रौ नक्षत इति वा (निरु० ४.१८) इत्यनेनापादाने कर्त्तरि वाऽस्य व्युत्पत्तिः, तिर इवैतद्रक्षांसि इत्यैतरेयब्राह्मणे (२.७) ॥ 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा०६ .१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वम्, ततः स्वरितः, नपुंसके प्रथमैकवचने – रक्षः॥

१८. पूञ् पवने (क्र्यादिगणः, उभयपदी) इति धातोर्निष्ठायां क्त-प्रत्ययः, कित्त्वाद् गुणाभावः – पूत।'निष्ठा च द्व्यजनात्' (अष्टा० ८.१.२८) इत्याद्युदात्तत्वम्, ततः परस्य स्वरितं च – पूत। 'परा'-उपसर्गः , 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ८१) इत्याद्युदात्तः। 'गतिश्च'(अष्टा० १.४.६०), 'कुगतिप्रादयः' (अष्टा० २.२.१८) इति गतितत्पुरुषसमासे, 'गतिरनन्तरः' (अष्टा० ६.१.२०५) इति पूर्वपद-प्रकृतिस्वरत्वेनाद्युदात्तस्वरसिद्धिः, स्वरितत्वमैकश्रुत्यं च, नपुंसके प्रथमैकवचने –परापूतम् ॥

१९. रा दाने (अदादिः परस्मैपदी) इति धातोः 'अमेरतिः' (उणा० ४.५९) इति बाहुलकादतिप्रत्यये प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तः; 'रातिः'। रातिर्दानशीलः, न रातिररातिः, तेऽरातयः। नञ्-तत्पुरुषसमासे 'तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' (अष्टा० ६.२.२) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः, पूर्वपदे नञ्, स च 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ८०); इति सूत्रेणाद्युदात्तः; प्रथमाबहुवचनेऽपि जस्-प्रत्ययः 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (अष्टा० ३.१.४) इत्यनुदात्तः,

लोकल्याण के कार्यों में अपने धन का व्यय न करनेवाले, जमाखोर धनपति वेद की भाषा में 'अराति' कहलाते हैं; जो स्वभावतः समाज के लिए किसी शत्रु से कम नहीं होते। वे भी वर्षवृद्ध व्यवस्था में फलफूल नहीं पाते। समाज उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। वे धनपति होकर भी अन्दर से बेहद गरीब होते हैं। इस आन्तरिक निर्धनता के कारण वे दानशील लोक-कल्याणकारी राजव्यवस्था में अथवा परोपकार में तत्पर लोगों के बीच प्रतिष्ठा न पा सकने के कारण स्वयं को अति दरिद्र, किसी पराजित योद्धा के समान अनुभव करते हैं। यही अरातियों का पराभव होता है।

१०. रक्षः, अपहतम्[२१] — निरन्तर ईश्वरीय भावों से भरे व्यक्ति के अन्दर सभी प्रकार के अवाञ्छित राक्षसीभाव स्वतः नष्ट हो जाते हैं। उन्हें सब अपने प्रतीत होते हैं। सबके प्रति ही प्रेम, किसी से कोई वैरभाव नहीं। इस निर्वैर वृत्ति का प्रभाव अन्य पशु-पक्षियों, मनुष्यादि सब पर पड़ता है। राक्षसी भाव के व्यक्ति भी उनकी इस निर्वैरवृत्ति के प्रभाव में आकर अपने राक्षसभाव को छोड़ देते हैं। ईश्वरीय भाव सम्पन्न व्यक्ति और राजा दोनों के सामने राक्षसी स्वभाव वालों की यही दशा होती है। दोनों में एक मूलभूत अन्तर होता है, एक के सामने वे उसके निर्वैरभाव =प्रेमबल से पराजित होते हैं तो दूसरी ओर राजा की कठोर शासन व्यवस्था, उसके सामर्थ्य के भय से अपने राक्षसी-कृत्यों का परित्यग करने को विवश हो जाते हैं।

११. वायुः[२२] **, वः**[२३] **, वि**[२४] **, विनक्तु**[२५] — वेद में यज्ञ = अग्निहोत्र मनुष्यों के यज्ञिय व्यवहार का प्रतीक भी है और स्वयं में पवित्र दैनिक कर्म भी। यज्ञाग्नि में आहुति दी गई सामग्री, ईश्वरीय व्यवस्था में अग्नि और वायु के संयोग से अणु-परमाणुओं में विभक्त होकर पर्यावरण की शुद्धि का विशेष कारण बनती है। उपासक का कर्तव्य है कि वह अपने दैनिक यज्ञिय व्यवहार में भी अपने कृत्यों के गुण-दोष पर विचार कर उन्हें निरन्तर परिशुद्ध करने

अतएव 'अरातयः' इत्याद्युदात्तं पदम्॥

२०. परापूत-प्रातिदिकादेव पुंसि प्रथमाबहुवचने – परापूताः॥

२१. अप+हन्+क्त। 'अप'–'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्– अप। हन हिंसागत्योः (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'निष्ठा' (अष्टा० ३.२.१०२), इति भूतकाले निष्ठासंज्ञकः क्त-प्रत्ययः। 'अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति' (अष्टा० ६.४.३७) इति नलोपः, प्रत्ययस्वरेण चान्तोदात्तः – 'हत'। 'गतिश्च'(अष्टा० १.४.६०), 'कुगतिप्रादयः' (अष्टा० २.२.१८) इति गतितत्पुरुषसमासे, 'गतिरनन्तरः' (अष्टा० ६.१.२०५) इति पूर्वपद-प्रकृतिस्वरत्वेनाद्युदात्तस्वरसिद्धिः, स्वरितत्वमैकश्रुत्यं च, नपुंसके प्रथमैकवचने –अपहतम्॥

२२. वा गतिगन्धनयोश्च (अदादिगणः परस्मैपदी) 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्' (उणा० १.१) इत्युण्-प्रत्ययः, 'आतो युक् चिण्कृतोः' ((अष्टा० ७.३.३३) इति युगागमः । यद्वा वेतेर्गतिकर्मणो बाहुलकादुण्, यद्वा 'छन्दसीणञ्च' (उणादि० १.२) इत्युणि वकारोपजनः। तथा च यास्कः 'वायुर्वातिर्वा वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मण एतेरिति स्थौलाष्ठीविरनर्थको वकारः' (निरु० १०.१)। गच्छन्ति विविधविषयेष्विति वायवः, प्राणादयः, इन्द्रियाणि वा। 'सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वं च वक्तव्यम्' (अष्टा० ६.१.१२८ भाष्ये वार्त्तिकम्) इति प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम्। 'वायु'-शब्दात् पुंसि प्रथमैकवचने– 'वायुः'॥

२३. युष्मदः षष्ठीबहुवचनस्थस्य 'युष्माकम्' इत्यस्य स्थाने प्रयुक्तम्, 'बहुवचनस्य वस्नसौ' (अष्टा० ८.१.२४), 'अनुदात्तं सर्वमापादादौ' (अष्टा०८.१.१८) इत्यतः सर्वानुदात्तत्त्वमनुवर्तते।

२४. 'वि'–'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२)

का प्रयास करता रहे। जिससे उसका जीवन और व्यवहार लोकोपकारी बन सकें। क्योंक **जब 'कर्तृत्व' बिगड़ जाता है तो फिर उसे लोक में 'करतूत' कहा जाता है, जो निश्चित रूप से नकारात्मक आचरण है।** राजा भी अपने कृत्यों के गुण-दोष का विवेचन/समीक्षा नित्य करता रहे, तभी उसकी प्रवृत्ति लोकहित के कार्यों में होगी और उसका शासन सुशासन हो सकेगा।

१२. वः, देवः[२६] **, सविता**[२७] **, हिरण्यपाणिः**[२८] **, अच्छिद्रेण**[२९] **, पाणिना**[३०] **, प्रति, गृभ्णातु**[३१] — प्रस्तुत मन्त्र का यह अन्तिम

इत्याद्युदात्तत्वम्– वि।

२५. विचिर् पृथग्भावे (रुधादिगणः उभयपदी) इति धातोः लोटि प्रथमपुरुषैकवचने तिप्-प्रत्ययः – विच्+तिप्। 'रुधादिभ्यः श्नम्' (अष्टा० ३.१.७८) इति श्नम्-विकरणम्, तच्च 'मिदचोऽन्त्यात्परः' (अष्टा० १.१.४७) आद्युदात्तश् च, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (अष्टा० ६.१.१५८) 'सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्र विकरणेभ्य इति वाच्यम्'(अष्टा० ६.१.१५८ वा०) – वि+श्नम्+च् + ति = वि+न+च्+ति। 'एरुः' (अष्टा० ३.४.८६) इति उत्वम्– विनच्+तु।'चोः कुः' (अष्टा० ८.२.३०) इति कुत्वम्– विनक् + तु = विनक्तु। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वे –'विनक्तु'॥

२६. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (अष्टा० ३.१.१३४) इति 'अच्' प्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम् – देवः॥ केषाञ्चिन्मते चितः (अष्टा० ६.१.१६३) इत्यन्तोदात्तत्वम्॥

२७. षुञ् अभिषवे (स्वादिगणः, उभयपदी) , षूङ् प्राणिप्रसवे (दिवादिगणः, आत्मनेपदी), षू प्रेरणे (तुदादिगण परस्मैपदी) इति धातोः 'ण्वुल्तृचौ' (अष्टा० ३.१.१३३) तृच्-प्रत्ययः, 'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा' (अष्टा० ७.२.४४) इतीडागमः, स च 'आगमा अनुदात्ता भवन्ति' इति वचनादनुदात्तः, तृचः चित्वाच्च 'चितः' (अष्टा० ६.१.१६३) इति सूत्रेण 'सवितृ'-प्रातिपदिकमन्तोदात्तम्। प्रथमैकवचने 'ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च' (अष्टा० ७.१.९४) इत्यनङ्, अनङो 'ङिच्च' (अष्टा० १.१.५३) इत्यन्त्यस्य 'ऋकारस्य' स्थान आन्तरतम्यात् स एवोदात्तः स्वरः – सविता॥

२८. हृञ् हरणे (भ्वादिगणः उभयपदी) इति धातोः 'हर्यतेः कन्यन् हिर च' (उणा० ५.४४) इति हृ-स्थाने हिरादेशः, कन्यन्-प्रत्ययश्च– हिर्+कन्यन्= हिर्+अन्य। कित्त्वात् लघूपधगुणनिषेधः। 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (अष्टा० ८.४.१) इति नस्य णत्वम्, कन्यनः नित्त्वादाद्युदात्तः– 'हिरण्य' प्रातिपदिकः। पण व्यवहारे स्तुतौ च (भ्वादिगणः, आत्मनेपदी) इति धातोः 'गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः' (अष्टा० ३.१.२८) इति आय-प्रत्ययः, 'अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च'(उणा० ४.१३४) इति इण्-प्रत्ययः, आय-प्रत्ययस्य लुक् च– पण्+इण्। इणः णित्त्वात् 'अत उपधायाः' (अष्टा० ७.२.११६) इति उपधावृद्धिः, प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः–'पाणि'प्रातिपदिकः। ततो बहुव्रीहिसमासे 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' (अष्टा० ६.२.१११) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण आद्युदात्तत्वम्, पुंसि प्रथमैकवचने– हिरण्यपाणिः॥

२९. छिदिर् द्वैधीकरणे (रुधादिगणः, उभयपदी) इति धातोः 'स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्वितिवृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसिदम्भिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक्'(उणा० २.१३) इति रक्-प्रत्ययः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'छिद्र' प्रातिपदिकः॥ न छिद्रमच्छिद्रम्, नपुंसके पुंसि वा तृतीयैकवचने 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' (अष्टा० ६.२.२) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरेणाद्युदात्तः, ततः स्वरितत्वमैकश्रुत्यं च – 'अच्छिद्रेण'॥

३०. पण व्यवहारे स्तुतौ च (भ्वादिगणः, आत्मनेपदी) इति धातोः 'गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः' (अष्टा० ३.१.२८) इति आय-प्रत्ययः, 'अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च'(उणा० ४.१३४) इति इण्-प्रत्ययः, आय-प्रत्ययस्य लुक् च– पण्+इण्। इणः णित्त्वात् 'अत उपधायाः' (अष्टा० ७.२.११६) इति उपधावृद्धिः, प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः– 'पाणि'प्रातिपदिकः। एतस्मात् पुंसि तृतीयैकवचने टा-प्रत्ययः,

वाक्य है। उपासक प्रभु के स्वरूप और उसकी करुणामय शाश्वत व्यवस्था पर मुग्ध है। यज्ञाग्नि में आहुति प्रदान किए गए द्रव्यों को अग्नि अणु-परमाणुओं में छिन्न-भिन्न करती है। वायु उन्हें वायु-मण्डल में विकरित करती है। सूर्य की किरणों के भूमण्डल पर पड़ने जो वाष्प बनता है, उसमें वे परमाणु एकाकार हो जाते हैं। वह वाष्प ही मेघमण्डल में जाकर घनीभूत मेघों का रूप धारण करती है। वही मेघ वर्षा रूप में धरती को धन-धान्य से धन्य करती है। इस मन्त्रांश में सूर्य के तीन विशेषण हैं – "देवः, सविता , हिरण्यपाणिः"। वह दिव्य तेज से पूर्ण होने से 'देव' है। वह मेघों की उत्पत्ति, मेघों के विघटन और मेघों से वर्षा के प्रसव का मुख्य कारक है; यह वर्षा ही धरती पर अन्नादिक ओषधियों को उत्पन्न करती है; अतः सूर्य को 'सविता' कहा गया है। वह 'हिरण्यपाणि' है; क्योंकि स्वर्णिम किरणें ही उसके हाथ हैं। उपासक की प्रार्थना है कि हमारा आचरण ऐसा हो, संसार के भोग्य पदार्थों को भोगने के प्रति हमारा ऐसा दृष्टिकोण हो, हमारा ऐसा सर्वहित साधक पुरुषार्थ हो कि आपकी कृपा से यह सूर्य अनन्त काल तक अच्छिद्र = निरन्तर एकरस होकर अपनी स्वर्णिम किरणों से जीवनोपयोगी विविध पदार्थों की प्राप्ति में हमारा सहाय करता रहे। तेजस्विता से पूर्ण, सर्वहित के कार्यों में प्रेरक, धन-धान्यों से पूर्ण राजकोष वाला राजा अपने राजकोष से ऐसी लोक-कल्याण की योजनाओं को बल दे जिनसे बल पाकर प्रजाजन अपना सुखपूर्ण जीवन यापन कर सकें तथा लोकहित के राजकार्यों में सहायक बन कर प्रजा के कर्तव्य का निर्वाह कर सकें।

१३. महर्षि दयानन्द का भावार्थ– महर्षि प्रस्तुत मन्त्र के इन उदात्त भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –"इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है – परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान, संग्राम में शत्रुओं का पराजय, अच्छे-अच्छे गुणों का ज्ञान, विद्वानों की सेवा, दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने ताप से छिन्न-भिन्न करने वाला अग्नि वा सूर्य और उनका धारण करने वाला वायु है, ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों की उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये॥"[३२]

'आङो नाऽस्त्रियाम्' (अष्टा० ७.१.१२) इति टास्थाने नादेशः, विभक्तिरनुदात्ता, अतः प्रातिपदिकस्वरेणैव मध्योदात्तम्–पाणिना॥

३१. ग्रह उपादाने (क्र्यादिगणः उभयपदी) इति धातोः लटि उत्तमपुरुषैकवचने, 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (अष्टा० ३.१.८१) – ग्रह् + श्ना + मिप्। 'ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति-पृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च' (अष्टा० ६.१.१६) इति सम्प्रसारणे – गृह् + ना + मि। 'रषाभ्याम् णत्वे ऋकारग्रहणम्' (अष्टा० ८.४.१-१) इति वार्तिकेन णत्वम्। श्ना-विकरणमाद्युदात्तम्। अनुदात्तस्य मिपः 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा० ८.४.६६) इति स्वरितत्वे 'गृह्णामि' इति रूपम्। वेदविषये 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि इति हस्य भत्वं वक्तव्यम्' (अष्टा० ८.२.३२ वा०) इति हस्य भः– 'गृभ्णामि'। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तः – 'गृभ्णामि'॥

३२. द्र० – "अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरः सर्वान् मनुष्यानाज्ञापयति मनुष्यैर्यज्ञानुष्ठानं संग्रामे दुष्टशत्रूणां विजयो गुणज्ञानं विद्यावृद्धसेवनं दुष्टानां मनुष्याणां दोषाणां वा निराकरणं सर्वपदार्थच्छेदकोऽग्निः सूर्यो वा तथा सर्वपदार्थधारको वायुश्चास्तीति विज्ञानं परमेश्वरोपासनां विद्वत्समागमं च कृत्वा सर्वा विद्याः प्राप्य सदैव सर्वार्था सुखोन्नतिः कार्येति॥" – यजु० १.१६ पर महर्षि दयानन्द के भाष्य में संस्कृत भावार्थ॥

सोचिये कि - आर्यों की शान क्या निराली थी! (२)

प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

गताङ्क जून द्वितीय से आगे...

डॉ. वेदपाल जी ने आर्यसमाज के अतीत तथा वर्तमान की चर्चा विषयक देश के कई प्रतिष्ठित विद्वानों की जो जानकारी मुझे दी उससे निर्विवाद रूप से यह तो निष्कर्ष निकलता ही है कि अतीत के छोटे-बड़े सब आर्यों में क्या संन्यासी, क्या विद्वान् उपदेशक, क्या लेखक, गवेषक और क्या समर्पित छोटे-बड़े सब कार्यकर्त्ताओं में मिशन की सेवा के लिये अथाह उत्साह व जोश था। धर्म रक्षा व धर्म प्रचार के लिए समय देने वालों की शान ही कुछ निराली थी।

मैंने आरम्भिक काल के पुराने आर्यपत्रों की फाइलों का सघन अध्ययन करके यह जाना है कि ज्ञात-अज्ञात पुराने आर्यलेखकों की उत्तम कृतियों के छपने पर सब बड़े-छोटे विद्वान् उनकी समीक्षा करते हुए आर्यजनता में नये-नये उत्तम साहित्य को पढ़ने के लिए अद्‌भुत जोश भर कर आर्यसमाज के संगठन में नवजीवन का संचार कर दिया करते थे। मैंने विरोधियों विधर्मियों के पत्रों में आर्यसामाजिक साहित्य की नई-नई पुस्तकों पर असंख्य लेख पढ़े हैं। इनसे आर्यसमाज के जीवन और शान का पता चलता था।

वर्तमान में मेरी प्रत्येक पुस्तक के छपने पर श्रीमान् भारतीय मुझ से पुस्तक भेंट स्वरूप मांग लिया करते थे। इतना ही नहीं मेरी किसी पुस्तक का नया संस्करण छपने का पता चलता था तो उसकी भी मांग कर दिया करते थे। उनके ऐसे कई पत्र मैंने अपने साहित्य में प्रकाशित किये हैं, परन्तु मेरी किसी भी छोटी-बड़ी पुस्तक पर कभी लेख लिखकर उसके प्रसार में सहयोग कतई नहीं किया। हाँ मेरी और मेरे साहित्य की निन्दा में कई बार लेख लिखकर मेरा उत्तर छपने पर पलटा खाते भी देखे गये। इस दुर्नीति से आर्यसमाज की शोभा क्या बढ़ेगी?

इसके विपरीत कुछ घटनायें आगे देकर आर्यसमाज के इतिहास, अपने पूर्वजों की विलक्षणता व शान के ठोस प्रमाण देकर वैदिक मिशन को चार चाँद लगाने वालों को बार-बार नमन करता हूँ।

जब कादियानी मिर्ज़ाइयों ने निन्दापरक लेख लिखा - यह सन् १९५४ की घटना है। कादियानियों ने अपने 'बदर' साप्ताहिक में आर्यसमाज के विरुद्ध बड़ा भड़कीला और विषैला लेख लिखा। आर्यसमाज के मन्त्री श्री देसराज ने मुझे निर्देश दिया कि जब पं. त्रिलोकचन्द अवकाश पर घर आयें उन्हें इस लेख का मुँह तोड़ उत्तर देने की विनती करना। मैंने ऐसे ही किया।

पण्डित जी ने उत्तर दिया, ''अब सारा जीवन हमीं ने उत्तर देना है? आप में योग्यता है। अच्छे लेखक हैं। अब आपको ऐसे सब कार्य करने हैं।''

पूज्य पण्डित जी की सत्प्रेरणा व आदेश से मैंने 'आर्यवीर' उर्दू साप्ताहिक में 'कादियानी करवटें' शीर्षक से बड़ी जोशीली साहित्यिक भाषा में प्रमाणों से परिपूर्ण एक लेखमाला देकर विरोधियों के छक्के छुड़ा दिये। उनकी बोलती बन्द करके दिखा दी। यह मेरी पहली ऐसी लेखमाला थी। फिर मैंने पीछे मुड़कर देखा ही नहीं।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का आशीर्वाद - उन्हीं दिनों की एक पूरक घटना श्रीमान् पण्डित ओम्प्रकाश वर्मा कभी-कभी सुनाया करते थे। उन्हीं दिनों आर्यसमाज रायकोट (पंजाब) का वार्षिकोत्सव था। यह समाज स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी से तिथियाँ पूछकर अपना उत्सव किया करता था। सभा ने कई भजन मण्डलियाँ और विद्वान् संन्यासी उस उत्सव पर भेजे।

अपने डेरे पर विश्राम करते हुए सब उपदेशकों ने मेरी लेखमाला की चर्चा छेड़कर मेरे जोश, मेरे उत्साह,

लेखनशैली, मेरी खोज, मेरे तर्कों और सटीक उत्तर की हृदय खोलकर प्रशंसा की। श्रद्धेय गुरुवर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज चुपचाप बैठे उनकी चर्चा सुनते रहे। जब उनकी चर्चा बन्द हुई तो पूज्य स्वामी जी ने कहा, ''यह तो आप सब को मानना पड़ेगा कि जब कोई आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द पर वार-प्रहार करेगा तो राजेन्द्र 'जिज्ञासु' चुप करके नहीं बैठेगा। वह लेखनी व वाणी से विरोधी को सप्रमाण उपयुक्त उत्तर देकर उसकी बोलती बन्द करके ही चैन लेगा।''

कुछ इस प्रकार के शब्दों में अपनी प्रतिक्रिया देकर श्रद्धेय स्वामी जी ने इस युवा ऋषि भक्त को अपने इस आशीर्वाद से मालामालकर दिया। दूरदर्शी पूजनीय संन्यासी नेता ने उस दिन इस सेवक की अनुपस्थिति में मेरी पीठ थपथपाकर मुझे रणभूमि में उतार दिया। 'कुछ तड़प-कुछ झड़प' शीर्षक से विरोधियों के ऐसे घृणित आक्रमणों का मैं उत्तर देता रहा। यह उस लौह पुरुष के आशीर्वाद का मधुर फल समझें। ऐसे नेता अब कहाँ हैं?

मेरे प्रयास - मैंने श्री लक्ष्मण जिज्ञासु को साथ लेकर ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन कने वाली एक बड़ी संस्था के संचालक को कहा, डॉ. धर्मवीर जी, डॉ. वेदपाल जी, डॉ. सुरेन्द्र जी, डॉ. ज्वलन्त जी आदि माननीय विद्वानों का जीवन परिचय किसी ऐसे ग्रन्थ में लावें। उन्होंने स्वीकृति दे दी, परन्तु मैं ही अपनी बढ़ती आयु तथा व्यस्तताओं के कारण फिर उनसे मिलने न जा सका।

श्री भागवत जी सरसंघचालक ने एक से अधिक बार यह कहा, ''जाति भेद ईश्वर का बनाया हुआ नहीं यह मनुष्य का बनाया हुआ है। संघ वालों को एक शताब्दी के बीत जाने पर यह बोध हो गया। यह अच्छी बात है, परन्तु इन्हें यह ज्ञान कैसे हुआ? महर्षि दयानन्द जी तथा आर्य महापुरुषों का नाम लेने की किसी सत्ताधारी सनातन धर्म की दुहाई देने वाले नेता की हिम्मत ही न हुई। गुजरात में जन्मे प्रधानमन्त्री ने भी महर्षि का नाम लेने का नैतिक साहस न दिखाया।''

सनातन धर्म-सनातन धर्म की रट लगाने वाले यह राजनेता क्या नहीं जानते कि सनातन धर्म क्या था और क्या रहा है? इनमें से किसी ने भी भूलकर एक बार यह नहीं कहा कि ईश्वर एक है। वह कण-कण में है, हर जन में है, हर तन में है, हर मन में है और कण-कण में है। वह प्रभु हमें भोग देता है। वह हमें जन्म देता है। ये लोग तो भगवान् को बनाते हैं उसमें प्राण डालते हैं और उसको भोग भी देते हैं। आर्यसमाज ने इस उलटी सोच, इस अन्धविश्वास के उन्मूलन के लिए धर्म प्रचार का डंका बजाना ही छोड़ दिया है।

सनातन धर्म के नाम पर डेढ़-दो वर्ष के बच्चों के विवाह हो जाते थे। वे क्या जाने विवाह क्या होता है? परिणामस्वरूप देश में लाखों अबोध बाल विधवायें थीं। लाखों विधवायें तीर्थों पर चढ़ाकर देव दासियाँ बनाकर व्यभिचार के नरक में धकेल दी जाती थीं। केवल आर्यसमाज ही एक ऐसी संस्था थी जो धर्म के नाम पर इस पापाचरण के उन्मूलन में जी-जान से जुटी रही। कौन आर्यसमाज के इस उपकार का आज नाम लेता है? सनातन धर्म के नाम पर विधवा विवाह का घोर विरोध होता था। शास्त्रार्थ किये जाते थे। आज सनातन धर्म की दुहाई देने वाले देवदासियों को पाप के नरककुण्ड में धकेलने के कुकृत्य पर क्षमा मांगते हैं क्या? इस विषय में चुप्पी क्यों नहीं तोड़ी जाती?

तीर्थ यात्राओं का प्रचार व दुर्घटनायें- आज भी तीर्थ यात्रा के नाम पर मनोकामनायें पूरी करवाने के लिये लम्बी-लम्बी यात्रायें की जाती हैं। यात्रा से पाप तो क्षमा क्या होने हैं और मनोकामनाओं की पूर्ति कहाँ होती है? दुर्घटनायें नित्यप्रति पढ़ने को मिल जाती हैं। घर उजड़ते रहे हैं आर्यसमाज ने इस अन्धविश्वास की अन्धी लहर और सरकार द्वारा इसे प्रोत्साहित किये जाने का कभी विरोध अब किया ही नहीं। आर्यसमाज के अस्तित्व का परिचय पाखण्ड खण्डन से मिलता था। नये-नये वक्ता, विद्वान् व लेखक आन्दोलन छिड़ने से ही पैदा होते हैं।

जब आर्यसमाज ने इस बुराई के उन्मूलन का आन्दोलन ही बन्द कर दिया तो वक्ता विद्वान् बनाने व बनने की परम्परा के लिये उत्साह जाता रहा। आर्यसमाज के अस्तित्व व संगठन शक्ति का पता कैसे लगे?

आर्य नेताओं की सूझ व तड़प- इन आँखों से इस लेखक ने आर्यसमाज के मुनियों, महात्माओं, नेताओं तथा विद्वानों की संगठन के लिये, मिशन के लिये धर्मरक्षा के लिये नये-नये दिलजले दीवानों, परवानों के निर्माण की सूझ, तड़प व ललक के दृश्य जो अस्सी वर्ष पूर्व देखे थे वे अब अतीत की कहानी बनकर रह गये। आर्य संन्यासियों वे नेताओं की दृष्टि आर्यसमाज के नये-नये कार्यकर्त्ताओं, सेवकों व सपूतों पर दूर-दूर के ग्रामों तक टिकी रहती थी। उन्हें उनके निर्माण की धुन लगी रहती थी। आगे यहाँ कुछ घटनायें दी जाती हैं।

महाशय कृष्ण जी की ललक देखी - मैं श्री महाशय कृष्ण जी के लिए एक बच्चे के समान था। वे मेरे लिए पिता तुल्य नेता थे। आपके मेरे नाम लिखे कुछ पत्र आज कोई पढ़े तो उनमें ''मान्यवर राजेन्द्र जी'' सम्बोधन पढ़कर हर कोई दंग रह जावेगा। आर्यसमाज के घोर विरोधी भी आर्यसमाज और उसके एक सर्वमान्य नेता की विनम्रता, बड़प्पन और एक नये कार्यकर्त्ता के लिए इतना प्यार देखकर आर्यसमाज के संगठन की विलक्षणता को नमन करेगा। उनके मन में मेरे निर्माण की इस ललक ने मुझे वह कुछ बना दिया जो मैं अब हूँ।

अब इस काम में मैंने एक लेखक को आर्यसमाज में ऋषि दयानन्द, पं. लेखराम आदि के नाम के साथ 'जी' शब्द का प्रयोग करने से बचते देखा।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के अन्तिम दिनों में यह सेवक उनके स्वास्थ्य का पता करने दीनानगर मठ में गया। चरण स्पर्श करके मैंने अभी उनके स्वास्थ्य के बारे कुछ पूछा ही नहीं, आप बोले, ''पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी की आत्मकथा छपी है। उसमें आपने यह मुक्तक पढ़ा है-

याद मेरी तुम्हें रहे न रहे,
जिक्र मेरा कोई करे न करे...,''

मैंने कहा, ''जी हाँ! सारी आत्मकथा बड़े ध्यान से पढ़ी। यह मुक्तक भी बड़ी श्रद्धा भक्ति से पढ़ा है। अत्यन्त मौलिक है।''

आर्यसमाज के तपोधन, लौहपुरुष नेता को मेरी रुचियों प्रवृत्तियों का इतना सूक्ष्म ज्ञान था कि वे जानते थे कि मैं पूज्य उपाध्याय जी की लेखनी, उनके साहित्य का दीवाना हूँ। जिसको छोटे-छोटे नये-नये कुमारों व युवकों की रुचियों का इतना सूक्ष्म व व्यापक ज्ञान हो वही समाज को, संगठन के नये-नये धर्मरक्षक व जाति सेवक दे सकता है। अब तो मैं दुर्घटनाग्रस्त होने पर बच कैसे गया, यह ईश्वर ही जाने। एक भी सभा संस्था के प्रधान, मन्त्री व नेता ने मुझे पत्र लिखकर कुशलक्षेम नहीं पूछा। इन नेताओं के होते समाज के तप तेज की छाप किसी पर क्या पड़ेगी?

स्वामी जी ने कार्य सौंप दिया - यह भी स्वामी जी के अन्तिम दिनों की घटना है। मैं उनका पता करने मठ में आता-जाता ही रहता था। स्वामी जी ने कहा, ''मैंने दिल्ली से आते हुए जालन्धर छावनी प्रिं. रामचन्द्र जावेद को 'हमारा राजस्थान' पुस्तक का गम्भीर अध्ययन करके महर्षि दयानन्द का सन् १८५७ की क्रान्ति विषयक दृष्टिकोण पर प्रामाणिक सामग्री देने को कहा है। आप भी इसे अवश्य पढ़िये और ऋषि का १८५७ के विप्लव से कुछ सम्बन्ध था या नहीं इस पर सप्रमाण प्रकाश डालें। भावुकतावश कुछ भी नहीं लिखना। जो लिखें यथार्थ हो, सत्य हो और प्रामाणिक हो।''

उन दिनों हम दोनों का एक-एक लेख स्वामी जी द्वारा सौंपे गये इस कार्य विषय में पत्रों में छपा था। इस घटना का महत्त्व इसमें है कि जो कार्य एक अनुभवी विद्वान् लेखक को सौंपा गया वही कार्य एक २३-२४ वर्षीय अनुभवहीन उदीयमान समाज सेवी लेखक को सौंपा गया। इतिहास की धारा ने यह सिद्ध कर दिया कि स्वामी जी एक दूरदर्शी नेता व मनुष्यों के पारखी थे।

आज इतिहास साक्षी है कि महर्षि का आज तक का लिखा गया सब से बड़ा जीवन चरित्र मेरे द्वारा ही अनूदित व सम्पादित है। विश्व में सर्वाधिक जीवनियाँ लिखने का कीर्तिमान मेरे नाम ही है। आर्यसमाज में कई महापुरुषों के विशालकाय जीवन चरित्र देने व लिखने का सौभाग्य इसी सेवक को प्राप्त है। प्रबुद्ध विद्वान् इतिहासकार इन उपलब्धियों का त्रेय इसी दूरदर्शी नेता को ही देना पड़ेगा।

वर्तमान काल में किसी सभा प्रधान, किसी नेता की प्रेरणा व मार्गदर्शन से कोई ठोस साहित्यिक उपलब्धि समाज ने प्राप्त की हो तो कोई बन्धु उस पर प्रकाश डालने की कृपा करें। अतीत में समाज की धाक का कारण नेताओं का तप, त्याग, दूरदर्शिता व व्यापक जन सम्पर्क ही रहा है।

इस युग में यहाँ-वहाँ आर्यसमाजों व कुछ धनवानों द्वारा बड़े-बड़े विद्वानों व साहित्यकारों को पुरस्कृत करने की एक परम्परा चल पड़ी। गुणियों का सम्मान हो, यह प्रशंसनीय कार्य है। दुर्भाग्य से यह भी समाज की गिरावट का कारण बन गया। वक्ता लेखक माँग-माँग कर, दबाव बनाकर पुरस्कार लेने लगे। मुझे हिण्डौन में बताया गया कि वहाँ एक पुरस्कार देने की जब घोषणा की गई तो निरन्तर आठ वर्ष तक राजस्थान से एक लेखक अपने नाम का प्रस्ताव भेजता रहा। वहाँ संस्था के सचिव ने उसे लिखा, ''जब तक आप पत्र लिखकर मांगना बन्द नहीं करेंगे आपको पुरस्कार नहीं दिया जावेगा।''

एक महात्मा को लेखक के रूप में पुरस्कृत करने का मैंने कैप्टन देवरत्न जी को सुझाव दिया। उन्होंने मेरा सुझाव स्वीकार कर लिया। उस संन्यासी ने मुझे कहा, ''जो पुरस्कार पूज्य मीमांसक जी, आचार्य उदयवीर जी तथा स्वामी सत्यप्रकाश जी को दिया है वही मुझे दिलवायें।'' यह सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा। यह अहंकार का अद्भुत उदाहरण था। आर्यसमाज उस बाबा को आचार्य उदयवीर की कोटि का पूजनीय विद्वान्, गवेषक और लेखक मानता ही नहीं था तो पुरस्कार क्या मिलना था। पुरस्कारों की भूख तो खूब देखी, परन्तु पुरस्कार ठुकराने की भी दो-चार घटनायें घटीं। उनके सम्बन्ध में कभी फिर लिखा जावेगा।

आर्यों की लेखनशैली की परम्परा तब और अब - आर्यसमाज में पं. गुरुदत्त जी तथा पं. लेखराम जी की लेखन शैली की प्रामाणिकता से एक ऐसी परम्परा बन गई कि आर्यसमाजियों की सब विरोधियों पर एक धाक थी। वर्तमान काल में श्रद्धेय पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक ने जब मुझे पं. लक्ष्मण जी लिखित ऋषि जीवन के अनुवाद तथा सम्पादन का कार्य सौंपा तो मेरे नाम लिखे गये अपने एक पत्र में यह विशेष निर्देश दिया कि ग्रन्थ में जो नई-नई घटनायें जोड़े उनका पूरा-पूरा प्रमाण-जानकारी के स्रोत का पता साथ दें। यह आर्य सामाज के साहित्य की विलक्षणता तथा विशेषता मानी जाती थी।

वर्तमान काल में मैंने कभी परोपकारी में आर्यसमाज का उर्दू साहित्य पर एक लम्बी लेखमाला देनी आरम्भ की तो परोपकारी के सम्पादक ने मुझे अपनी इस विषय में पाण्डुलिपि ही उसे भेजने के लिए पत्र लिखा। मैंने भी यह सोचकर अप्रकाशित वह पुस्तक भेज दी कि बार-बार लेख भेजना न पड़ेगा।

लेखमाला तो छपनी बन्द हो गई। सम्पादक ने मेरी सारी सामग्री तोड़-मरोड़कर आर्यसमाज क पुराने उर्दू व फारसी के लेखकों व साहित्य को 'आर्य लेखक कोश' नाम से अपना एक नया ग्रन्थ बनाकर छपवा दिया इसमें एक सहस्र से ऊपर मनगढन्त मिथ्या कथन जोड़ दिये। कहीं मेरी पाण्डुलिपि का व मेरा नाम तक न दिया। कहीं आभार प्रकट करने के लिए एक शब्द न दिया। मैंने भी यह छल कपट सह लिया। पाण्डुलिपि लौटाने के लिये न तो कहा न लिखा। किसी ने उसे यह भी न पूछा कि इतने विशाल उर्दू फारसी साहित्य की यह जानकारी कहाँ से मिल गई? कभी इस विषय पर व्याख्यान क्यों न दिया?

डॉ. वेदपाल जी का नाम तक नहीं - जिनका

आर्यसमाज के साहित्य सृजन से कोई लेना-देना नहीं था (यथा Ph. D. के शोध प्रबन्ध) तथा किसी इक्का-दुक्का लेख के लेखकों को भी आर्यलेखक मानने का अनर्थ कर दिया गया। श्री डॉ. वेदपाल जी की कोटि के जाने-माने वैदिक विद्वान् का उस भ्रामक ग्रन्थ में गुणी विद्वानों को नाम तक नहीं मिलेगा। कभी आचार्य उदयवीर जी की कोटि के विद्वान् महापुरुष मेरा परिचय मेरी 'उर्दू साहित्य लेखमाला' से दिया करते थे।

पादरी बेरिंग नाम के ईसाई विद्वान् की ऋषि से भेंट हुई थी। उसके नाम पर बटाला में एक शानदार पुराना कॉलेज है। अब ऋषि जीवन में मनगढन्त इतिहास लिखने वाले लेखक ने उसे warning नाम दे दिया है। आर्यसमाज की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी गई। ऋषि जी ने राजकोट में 'देश भाषा' में व्याख्यान दिये। इससे विशेष प्रभाव पड़ा। 'देशभाषा' से अभिप्राय गुजराती था। ऋषि द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों पर कांगड़ी से एक ग्रन्थ छपा है और भी कई एक ने गुजरात में राजकोट में दिये गये कुछ व्याख्यानों की भाषा गुजराती भी लिखी है। यह तो महा अन्धेर है कि वर्तमान में इतिहास प्रदूषण की इस लहर ने आर्यसमाज को अपयश तो दिया ही है पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, आचार्य उदयवीर सरीखे लेखक ही मिलने बन्द हो गये। **क्रमशः**

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अतः हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि — **प्रधान**

कन्हैयालाल आर्य — **मन्त्री**

दु:खों के कारण

- पण्डित रघुनन्दन शर्मा

पण्डित रघुनन्दन शर्मा की महत्त्वपूर्ण कृति - वैदिक सम्पत्ति से यह लेख साभार उद्धृत है। विद्वान् लेखक ने जर्मन् विद्वान् Adolf Just के विचारों को उद्धृत कर उन पर विचार किया है। पाठक अंग्रेजी के मूल उद्धरण वैदिक सम्पत्ति संस्करण पाँच के पृष्ठ १४-२१ पर देख सकते हैं।

-सम्पादक

१. आरम्भ में मनुष्य रोग, द्वेष दु:ख-दरिद्रता से मुक्त था। न वह पापी था न रोगी। वह विशुद्ध था और ईश्वरीय क्षेत्र उसमें विद्यमान था।

२. वह अपने आप के कुसूर से, स्वच्छन्दता और आज्ञा भङ्ग से पतित हुआ और संसार का स्वर्गीय सुख खो बैठा।

३. उसकी अपने आपकी योग्यता और उन्नति ने न राज्य किया और न हुकूमत; परन्तु अपराधों की वृद्धि की, जिससे रोग-दोष, दु:ख-दरिद्रों ने आ घेरा। विषय-वासना से उत्पन्न हुई गुलामी से सारी दुर्गति हो गई।

४. वर्तमान वैज्ञानिक ढूँढ़-तलाश ने जिन्दा पशुओं के शरीर काट-काटकर आँख, कान, हृदय, पेट आदि को निकाला। इन बेदर्द अपराधों के लिए वर्तमान सायंस जवाबदार है।

५. विज्ञान बेदम है। भूकम्प आने के पहिले पशु-पक्षी भाग जाते हैं, पर मनुष्य को खबर नहीं होती। विज्ञानवादियों का कमीशन भी एक बार कुछ खबर न पा सका और भूकम्प आ गया।

६. बीमारी पाप है। यदि संसार में पाप न हो, तो बीमारी भी न हो। यह मानी हुई बात है कि मानसिक विकार- खुदगर्जी, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, अनुदारता और क्रोध आदि का भयंकर असर शरीर पर पड़ता है।

७. मनुष्य के पापों का असर समस्त नेचर को दूषित कर देता है। मनुष्य ने उन्नति के नाम से नेचर को बिगाड़ दिया है। जंगलों को काटकर, वायु को दुर्गन्धित करके और शिकार खेलकर सृष्टि को अस्वाभाविक बना दिया है।

८. संसार में समस्त मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित हैं। पागलपन बढ़ रहा है और आत्महत्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। यदि सायंस की उन्नति एकदम बन्द कर दी जाय, तो फिर परमेश्वर सहायता करे।

९. क्या कभी किसी ने विचार किया कि हम क्यों जीते हैं, हमारे जीवन का क्या उद्देश्य है, हम क्यों मरते हैं, संसार का मुख्य प्रयोजन क्या है और परलोक क्या है?

वैदिक सम्पत्ति-

१०. जिसे पुन: ईश्वर-प्राप्ति पर विश्वास होता है वह भौतिक उन्नति के तंग मार्ग से निकलकर परमेश्वर के प्रकाशमय मार्ग में आता है। यही सच्चा विज्ञान है ऐसा करने से उसमें पुनर्जीवन तथा बल की वृद्धि होती है और अन्त में उसका मोक्ष हो जाता है। इसलिए लौटो लौटो नेचर की ओर लौटो नीचे लिखे व्यवहारों से बर्तो तभी परमेश्वर तुम पर प्रसन्न होगा और बिगड़ा काम बन जायगा।

दु:खों से छूटने के उपाय

१. मनुष्य फलाहारी है। मेवा और फल उसके लिये महान् लाभकारी हैं। उसके पचानेवाले यन्त्रों की बनावट फल पचाने के ही लिए है। फलाहार से ताजगी और ताकत मिलती है। दूध, दही और मक्खन खाना उत्तम है।

२. यदि लोग फलों के लिए फलोत्पन्न करनेवाले बगीचे लगाने शुरू कर दें, तो परिश्रम करने के लिए

उत्तम मौका हाथ लग जाय और बहुत-सी जमीन अधिक फलोत्पन्न करने के लिये निकल आवे। शराब और तम्बाकू उत्पन्न करने के लिए व्यर्थ ही जमीन का बहुत-सा भाग रोका गया है। इसी तरह अन्य बहुत से अनावश्यक पदार्थ भी उत्पन्न करके जमीन रोकी गई है। बगीचों से तथा उनमें काम करने से तन्दुरुस्ती और आनन्द मिलता है। शुद्ध वायु, प्राकृतिक दृश्य और पशु-पक्षियों के विहार से मन प्रसन्न होता है। अनेक प्रकार की अन्य कसरतों से बगीचे का श्रम बहुत ही लाभदायक है।

३. यद्यपि हम हमेशा नंगे नहीं रह सकते, तो भी शरीर का बहुत बड़ा भाग खुला रह सकता है। खुले पैर बिना जूता पहने घर में और बाहर फिरना बहुत ही लाभकारी है। स्त्री और पुरुष दोनों को चाहिये कि नंगे शिर घूमने की आदत डालें। दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि हमारे पुरुष और स्त्री-वर्ग दोनों इस कमबख्त फैशन की दयाजनक गुलामी में फंस गये हैं। फिजूलखर्ची से न तो अपने बाल-बच्चों का ही सुधार कर सकते हैं और न इष्ट मित्रों की सेवा ही हो सकती है।

४. सोने के लिये तो घास और लकड़ी के बने हुए सादे झोंपड़े ही उत्तम हैं। ये झोंपड़े खुली वायु में जहाँ सघन वृक्षावलि और काफी रोशनी मिलती हो बनाने चाहिये। जमीन पर मुलायम घास बिछाकर अथवा रेतीली मिट्टी (बालू) बिछाकर सोना उत्तम है। मिट्टी के स्नान से दाह और अन्य पुराने रोग भी शान्त हो जाते हैं।

५. बिजली की रोशनी आँख के लिए महाहानिकारक है।

६. ऊंचे और बड़े मकानों से सदैव भूकम्प में दबकर मर जाने का भय रहता है। जिन देशों में यह सभ्यता नहीं पहुंची, वहाँ लोग अब तक झोंपड़ों में ही रहते हैं और भूकम्प से दु:खी नहीं होते। बड़े मकान शहरों में होते हैं। अत: शहरों और कस्बों से अपना स्थान तुरन्त ही हटा लेना चाहिये। मनुष्य का असल स्थान तो जंगल है। शहरों में तो बीमारी और अशान्ति का ही साम्राज्य है।

वैदिक सम्पत्ति-

७. जंगल न हों वहाँ बड़े-बड़े बगीचे लगाकर थोड़े दिन में जंगल बना लेना चाहिये। मनुष्य जब फिर फल खाने लगेगा तो बगीचों से जंगल हो जायेंगे, जहाँ पशुओं का चारा होगा और मनुष्य के लिए फल उत्पन्न होंगे।

८. विषय-भोग तभी होना चाहिये, जब प्रकृति आज्ञा दे।

९. हम जितना ही नेचर की ओर बढ़ते जायें, उतने ही अंश में प्राकृतिक विज्ञान और कला से हटते जाना बिना ऐसा किए हम सत्य स्थान में नहीं पहुँच सकते।

१०. कातना, बुनना, सीना और अन्य गृहस्थी के आवश्यक पदार्थ सब घर में ही तैयार कर लेने चाहिये। विलास की चीजें और साजसामान एकदम हटा देना चाहिए। घर, बाग और खेतों के काम से तन्दुरुस्ती और प्रसन्नता बढ़ती है। उन्हें हम जितना ही अपनावेंगे, उतने ही सुखी होंगे।

११. यह मानी हुई बात है कि सादगी ही सत्यता का चिह्न है।

१२. पशुओं का पालन अच्छी तरह करना चाहिये, क्योंकि उनसे सवारी, बारबरदारी, दूध और खेती सम्बन्धी अनेक काम लिये जाते हैं। पशुओं को ताजा शुद्ध चारा देना चाहिए। जिन घोड़ों को घास के बजाय दाना अधिक दिया जाता है, वे बीमार हो जाते हैं। पर जिन बैलों को हरी घास दी जाती है, वे नीरोग रहते हैं। घोड़े की पूँछ वगैरह भी न काटनी चाहिये।

दु:खों से छूटने के उपाय-

१३. कृत्रिम खाद्य से उत्पन्न किया गया अन्न रोगी होता है। यहाँ (विलायत) के बाबरची विदेशी गेहूँ अधिक पसन्द करते हैं। गन्दी खाद से उत्पन्न अन्न को तो पशु भी पसन्द नहीं करते। यही हाल कृत्रिम फलों का भी समझना चाहिये।

१४. इस तरह से यदि मनुष्य जड़ प्रकृति का मोह छोड़कर परमात्मा की तरफ फिरे, तो आपसे आप

सामाजिक असमानता मिट जाये और परिश्रम में सबको बराबरी देखने को मिले। मनुष्य शुद्ध हो जाय, नीरोग हो जाय, बलवान् और प्रतिभावान् हो जाय। संसार से वैर, द्वेष, ईर्ष्या चली जाय और एकबारगी हिंसा विदा हो जाय। भेड़िया भेड़ के साथ, चीता बकरी के साथ और सिंह गाय के साथ बैठकर प्रेम करें। अर्थात् संसार में प्रेम, शान्ति और आनन्द का दरिया भर जाय और दु:ख, दरिद्र, शोक, सन्ताप का नाश हो जाय।

अब प्रश्न होता है कि पाश्चात्यों में ऐसे विचार क्यों उत्पन्न हुए? ऐसे विचारों की उत्पत्ति के चार कारण हैं-

(१) पाश्चात्य विद्वानों को दिखलाई पड़ रहा है कि संसार में जनसंख्या बढ़ रही है, अत: एक समय ऐसा आनेवाला है कि पृथ्वी पर पैर रखने की भी जगह न रहेगी।

वैदिक सम्पत्ति-

(२) पाश्चात्य विद्वानों में साम्यवाद की लहर उत्पन हुई है। इस लहर में गरीब अमीर, मालिक नौकर, राजा प्रजा, छोटे बचे और कुलीन-अकुलीन के लिए स्थान नहीं है।

(३) शान्तिमय दीर्घ जीवन की स्वाभाविक अभिलाषा, बीमारी और युद्धों के तिरस्कार ने भी विचारों में परिवर्तन किया है।

(४) नवीन वैज्ञानिक खोजों के आधार पर पुनर्जन्म, परमेश्वर, कर्मफल और मोक्ष आदि की पारलौकिक चर्चा तथा सत्यता की प्रेरणा ने भी विद्वानों को विचार-परिवर्तन की ओर आकर्षित किया है।

ये चारों सिद्धान्त ऐसे हैं जिनसे उपेक्षा नहीं की जा सकती। ये नजर के सामने हैं और व्यवहार में आ रहे हैं। जनसंख्या की वृद्धि, समता के भाव, जीने की स्वाभाविक इच्छा और परलोक चिन्ता ने पाश्चात्यों को कुदरत की ओर लौटने और वर्तमान भौतिक विलासिता से दूर भागने पर विवश किया है। साम्यवाद के पूर्ण प्रचार से कोई देश किसी अन्य देश का धन अपहरण नहीं कर सकता। वह यह इरादा नहीं कर सकता कि अपने व्यापार-कौशल और सेना के दबदबे से दूसरे देशवासियों को निर्धन करके स्वयं धनवान् हो जाय। ऐसी दशा में मशीनों, कल कारखानों और नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों का अन्त होना ही चाहिये। साथ ही नौकर के नाम का भी अन्त होने से अमीरत का भी नाश होना सम्भव है। सबको समान अन्न-वस्त्र मिलने मिलाने की व्यवस्था किये बिना साम्यवाद का कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता। परन्तु इस समता से भी यह न समझना चाहिये कि आजकल की भाँति विपुल परिमाण में अन्न, वस्त्र और सुखसाधन की सामग्री सबको मिल सकेगी। जनसंख्या की वृद्धि के कारण बहुत ही थोड़ा-थोड़ा सामान मिल सकेगा। चाहे जितना थोड़ा-थोड़ा लिया जाय, पर यदि सन्तति वृद्धि होती गई, तो थोड़ा-थोड़ा भी न मिल सकेगा। सन्ततिनिरोध के बिना और कोई उपाय नहीं है कि जनसंख्या की वृद्धि रोकी जा सके। सन्ततिनिरोध के आज तक जितने कृत्रिम उपाय किये गये हैं, सबमें रोगों की वृद्धि हुई हैं। इसलिये बिना अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत के और कोई उपाय नहीं है। अखण्ड ब्रह्मचारी के लिए विलासिताहीन सादा जीवन ही उपयोगी हो सकता है। इसलिए भी वर्तमान आडम्बर का नाश ही दिखता है। जनसंख्या की वृद्धि के नाश होने का एक दूसरा नियम है, जो अब तक चलता रहा है, वह है युद्ध, दुष्काल और बीमारी, परन्तु सभ्यता का दम भरनेवाले पाश्चात्य कहते हैं कि यदि अब भी युद्ध होते ही रहे, दुष्काल और बीमारियों को हम न रोक सकें तो कहना पड़ेगा कि विकासवाद असत्य है, क्योंकि लाखों वर्ष पूर्व भी जीने के लिए युद्ध ही होते थे और बीमारी तथा दुष्काल से जनसंख्या का संहार होता था। परन्तु अब वह समय नहीं है। अब ज्ञान-विज्ञान का काल है, इसलिए अब बर्बरतापूर्ण रक्तपात नहीं किया जा सकता। युद्ध तो बन्द ही करना पड़ेगा और नहरों तथा वैज्ञानिक वर्षा से दुष्काल हटाने पड़ेंगे, तथा बीमारियों

को दूर करना ही पढ़ेगा। 'लीग ऑफ नेशन्स' अर्थात् संसार की समस्त जातियों की महासभा का जन्म युद्धों के रोकने के ही लिए हुआ है।

क्यों यह सब करना पड़ेगा? इसलिए कि न करने से सभ्यता का नाश होगा। क्यों सभ्यता की रक्षा ही करनी चाहिये? इसलिए कि ज्ञान से उत्पन्न न्याय, दया, प्रेम और चरित्र का उपयोग हो। न्याय, दया, प्रेम, विचार और चरित्र गठन ने अब मनुष्य सभ्यता को इतने ऊँचे दर्जे पर पहुंचा दिया है कि वह अपनी और अन्यों की जिन्दगी को अमूल्य समझने लगा है। जिस प्रकार स्वभावत: कोई मनुष्य किसी के द्वारा मरना नहीं चाहता, उसी प्रकार उच्च सभ्यता से प्रेरित होकर वह किसी को मारना भी नहीं चाहता। ऐसी दशा में युद्धों, बीमारियों और दुष्कालों को होने देना, अब अन्त:करण गंवारा नहीं करता। यहाँ से दीर्घ जीवन की कामना और महत्ता आरम्भ होती है। दीर्घ जीवन के लिये ब्रह्मचर्य, सादगी, सात्त्विक आहार, प्राणायाम, चिन्तात्याग और वननिवास आदि साधन अनिवार्य हैं। इससे भी वर्तमान भौतिक सभ्यता का अन्त ही प्रतीत होता है। दीर्घ जीवन यदि बिना किसी उद्देश्य के केवल जीते ही रहने के लिये है, तो वह निरर्थक ही सा है। पर बात यह नहीं है। मनुष्य के सामने जन्म-मरण, सुख-दु:ख, लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा और बन्ध-मोक्ष जैसे महान् आवश्यक और विज्ञानपूर्ण इतने ज्यादा सुलझाने योग्य प्रश्न हैं और उनके सच्चे उत्तर पाने के लिये इतना अधिक काम है कि दीर्घ जीवन के लिये लम्बे से भी लम्बा समय बहुत ही थोड़ा है। यदि यह इस मार्ग से जो उसकी खास जिन्दगी से सम्बन्ध रखता है, ईमानदारी के साथ आगे चले तो वह अपने और संसार के लिये अत्यन्त अमूल्य वस्तु सिद्ध हो सकता है। अतएव इस दृष्टि से भी पाश्चात्त्य वर्तमान युग का नाश ही होना है।

पाश्चात्त्य विद्वानों ने इतनी लम्बी स्कीम देखकर और वर्तमान भौतिक अन्धाधुन्ध से आगे आकर जो विचार प्रकट किये हैं, उन्हें हम 'कुदरत की ओर लौटो' नामी पुस्तक से लेकर बहुत कुछ लिख चुके हैं। अब आगे उन्हीं सिद्धान्तों की पुष्टि में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने जो अन्य पुस्तकें और लेख लिखे हैं, उनके कुछ उदाहरणों को उद्धृत करके दिखलाना चाहते हैं कि किस प्रकार पाश्चात्त्य सहृदय विद्वान् वर्तमान भौतिक जन्जाल से निकलकर सात्विक प्रकाश में उगना चाहते है।

भौतिक उन्नति में विलास प्रधान वस्तु है। विज्ञान का मूल ध्येय अत्यधिक रति है। शृंगार, मादक वस्तुओं का सेवन तथा मांस-मत्स्य का आहार उसके सहायक हैं और तज्जन्य अनिवार्य बीमारियों के इलाज के लिए वैज्ञानिक ढूँढ तलाश आवश्यक है। इसी तरह शृंगार के लिए भी नाना प्रकार के चित्ताकर्षक पदार्थों की आवश्यकता है और उनकी उत्पत्ति के लिए शिल्पकला की उन्नति अनिवार्य है। इस सब आयोजन के लिए बिना विपुल धनराशि के बनता ही नहीं और न वह धन बिना व्यापार के इकट्टा ही हो सकता है। अतएव व्यापार कौशल से दूसरों का धन अपहरण करने के लिए यान्त्रिक कारखानों और कम्पनियों की आवश्यकता होती है तथा इस समस्त पाप की रक्षा के लिए सेनाबल और सैनिक विज्ञान की उससे भी अधिक आवश्यकता होती है। जातीय अभिमान, हुकूमत और किसी खास सभ्यता का प्रचार आदि उस पापके छिपाने के बहाने बना लिए जाते हैं और दूसरों का खून चूसकर कामक्रीड़ा की जाती है। विद्वानों ने इस कामक्रीड़ाजात विघातक नीति से घबराकर लोगों को कुदरत की ओर लौटने का आदेश किया है। आगे हम कामक्रीड़ा, विलास, शिल्प पाश्चात्त्य सभ्यता, राज्य, युद्धविज्ञान और सात्त्विक मार्ग आदि पर जो वहाँ के विद्वानों ने अपनी राय दी हैं, उनको संक्षेप से लिखते हैं।

वहाँ की कामुकता की क्या हालत है, उससे क्या हानि हो रही है, कृत्रिम उपायों से कैसे भयंकर परिणाम हो रहे हैं और उस पर विद्वान् अब किस प्रकार का

नियन्त्रण करना चाहते हैं, यहाँ हम नाममात्र-नमूने के रूप में दिखलाना चाहते हैं। जंजीबार के विशप ने ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी-आधुनिक सभ्यता के केन्द्र-लन्दन के बारे में लिखा है कि 'London is glorious city but is terribly in the hands of Satan' अर्थात् लन्दन एक सुन्दर और ऐश्वर्यशाली शहर है, परन्तु वह शैतान के पंजों में बुरी तरह से फंसा हुआ है। सन् १६२५ में ट्रुथ (Truth) नामक मशहूर समाचार-पत्र ने लिखा था कि इंग्लैण्ड में हर साल ३७००० बच्चे नाजायज तौर पर उत्पन्न होते हैं, जिनका न कोई बाप होता है और न कोई माँ। विज्ञान और कला में उन्नत जर्मनी की राष्ट्र-प्रतिनिधि सभा को ३०००० आदमियों ने अपने हस्ताक्षरों से एक आवेदन-पत्र भेजा था कि जर्मनी में नर को नर से अर्थात् पुरुष को पुरुष से शादी करने की इजाजत दी जाय। इस विषय पर रीस्टाग में बहस भी हुई थी। अमेरिका के प्रसिद्ध जज लिंड्से का कहना है कि चौदह साल की अवस्था तक पहुँचने से पहिले ही दश में से एक अमेरिकन अविवाहित बालिका गर्भवती हो जाती है। अमेरिका में डेनवर नाम का एक छोटा सा कस्बा है, जिसकी आबादी केवल ३०००० है। उसमें १००० युवतियों विवाह होने से पहिले ही गर्भवती पाई गई हैं। विलायत में बलात्कारों के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान कमेटी बनी थी, उसकी रिपोर्ट के आधार पर लाला लाजपत राय ने इस विषय में बहुत कुछ लिखा है। इसी प्रकार जज लिंड्से और थर्स्टन आदि विद्वानों ने भी लिखा है। जब से मिस मेयो ने भारत के नापदान की रिपोर्ट प्रकाशित की है, तब से पश्चिम के देशों की ऐसी छीछालेदर सुनने को मिल रही है कि बस तोबा! लोगों ने वहाँ के अपवित्र, वीभत्स और पाशविक कृत्यों का ऐसा वर्णन किया है कि उसको पढ़कर यूरोप निवासियों की मनोवृत्ति का चित्र सामने आ जाता है। यह सब अमंगल और अपवित्र वर्णन हम यहाँ नहीं करना चाहते, किन्तु हम यह अवश्य दिखलाना चाहते हैं कि इन पाशविक कृत्यों का यहाँ के मानसिक, शारीरिक और सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, वैज्ञानिक साधनों ने क्या असर किया और अब विचारशील भद्र विद्वानों की अन्तिम राय क्या है?

गुजराती 'नवजीवन' के दो अंकों (२० सितम्बर और १४ अक्टूबर सन् १६२८) में थर्स्टन साहब की 'वैवाहिक तत्त्वज्ञान' नामी पुस्तक के विषय में एक लम्बा लेख छपा है। उसमें लिखा है कि थर्स्टन साहब अमेरिका की सेना में दस वर्ष तक रहे और मेजर के पद तक पहुँचे। सन् १६१६ में नौकरी से निवृत्त होकर न्यूयॉर्क में रहने लगे। अठारह वर्ष तक उन्होंने जर्मनी, फ्रांस, फिलपाइन, चीन और अमेरिका के विवाहित दम्पतियों का खूब अनुभव किया। अपने निरीक्षण के साथ ही सैकडों प्रसूतिशास्त्र निपुण स्त्रीरोग चिकित्सक डॉक्टरों के साथ परिचय और पत्रव्यवहार भी किया। इसके सिवा लड़ाई में सम्मिलित होनेवाले उम्मीदवारों के शारीरिक परीक्षापत्रों तथा आरोग्यरक्षक मण्डलों की इकट्टा की हुई सामग्री से भी परिचय प्राप्त किया। इतने अनुभव के बाद आप कहते हैं कि 'निरंकुश विषय भोग से स्त्रियों के ज्ञानतन्तु अत्यन्त निर्बल हो जाते हैं। असमय में ही बुढ़ापा आ जाता है, शरीर रोग का घर बन जाता है और स्वभाव चिड़चिड़ा तथा उत्पाती हो जाता है। वे बच्चों की भी सम्भाल नहीं कर सकतीं। गरीबों के यहाँ इतने बच्चे पैदा होते हैं कि उनका पोषण और सेवा करना मुश्किल हो जाता है। ऐसे बालक रोगी होते हैं और बड़े होने पर जरायम पेशा हो जाते हैं। बड़े लोगों में प्रजोत्पत्ति रोकने और गर्भपात करनेवाले साधनों का उपयोग होता है। इन साधनों का उपयोग साधारण स्त्रियों को सिखलाने से उनकी सन्तान रोगी, अनीतिमान् और भ्रष्ट होकर अन्त में नाश हो जाती है। अतिशय सम्भोग के कारण पुरुष का पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है। वह काम करके अपना निर्वाह करने में भी अशक्त हो जाता है और अनेक रोगों के कारण असमय में ही मर जाता है। अमेरिका में आज

विधुरों की अपेक्षा विधवाएँ बीस लाख अधिक है। इन में थोड़ी ही लड़ाई के कारण विधवा हुई हैं। अधिक तो इस कारण विधवा हुई हैं कि विवाहित पुरुषों का अधिक भाग २० वर्ष की उमर पर पहुँचने के पहिले ही जर्जरित हो जाता है। पुरुष और स्त्री दोनों में एक प्रकार की हताशता आ जाती है। संसार में आज जो दरिद्रता है, शहरों में जो घने और गरीब महल्ले हैं, वे मजदूरी न मिलने के कारण नहीं हैं, किन्तु आज की वैवाहिक स्थिति से पोषण पाये हुए निरंकुश विषयभोग के कारण हैं। गर्भावस्था में विषय-भोग के कारण उत्पन्न हुए बच्चे खामीवाले विकलांग होते हैं। अमेरिका में इनकी परीक्षा हुई, तो १८ से ४२ वर्ष की उम्र तक के २५ लाख १० हजार सेना योग्य जवानों में से केवल ६ लाख ७२ हजार ही आदमी साबित निकले, शेप सब हीनांग थे'।

कृत्रिम उपायों से सन्ततिनिरोध का जो मार्ग अवलम्बन किया गया है, उससे तो और भी अधिक भंयकर परिणाम हुए हैं। थर्स्टन साहब कहते हैं कि 'स्त्रियाँ गर्भाधान रोकने के लिए जिन साधनों का प्रयोग करती हैं, उनके विषय में डाक्टरों की राय है कि प्रति सैंकड़ा ७५ को नुकसान पहुंचा है। कृत्रिम साधनों से गर्भ रोकने के कारण अकेले पैरिस में ही ७२ हजार रजिस्टर्ड और इससे अनेक गुणा अनरजिस्टर्ड वेश्याएँ हैं। फ्रांस के अन्य शहरों में भी इसी प्रकार वेश्याओं और व्यभिचारिणी स्त्रियों की बेहिसाब संख्या है। कृत्रिम साधनों के द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकने का प्रश्न बड़ा गम्भीर है। मैं अपने अवलोकनों और अन्वेषणों से बलपूवर्क कहता हूँ कि आज तक इसका प्रमाण नहीं मिला कि इन साधनों से हानि नहीं होती। किन्तु ज्ञानवान् स्त्रीरोग चिकित्सक कहते हैं कि इन साधनों से शरीर और नीति पर बड़ा ही भयंकर परिणाम होता है। अनुभवी लोग कहते हैं कि कृत्रिम साधनों के उपयोग से स्त्रियों को कैन्सर आदि रोग हो जाते हैं। स्त्रियों के कोमल से कोमल मज्जातन्तुओं पर इन कृत्रिम साधनों का बहुत खराब असर होता है, जिससे अनेकों रोग उत्पन्न होते हैं। बहुत से प्रतिष्ठित डॉक्टरों का कहना है कि इन कृत्रिम साधनों के कारण बहुत-सी स्त्रियों बन्ध्या हो गई हैं। उनका जीवन शुष्क हो गया है और उनका संसार विषरूप हो गया है।'

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों से निवेदन

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान अजमेर में आने वाले सज्जनों के निवास-भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह व्यवस्था ठीक से चल सके, इसके लिए आप अतिथियों के सहयोग की अपेक्षा है। जो भी अतिथि यहाँ कम या अधिक दिन रुकना चाहें तो आने के कम से कम दो दिन पूर्व परोपकारिणी सभा या ऋषि उद्यान के कार्यालय में सूचना देकर स्वीकृति अवश्य प्राप्त कर लेवें। सूचना में अपना नाम, पता, दूरभाष व साथ में आने वाले व्यक्तियों की संख्या, उनकी अवस्था (आयु), स्त्री या पुरुष सहित बता देवें। शौचालय की सुविधा भारतीय या पाश्चात्त्य अपेक्षित है? आपके यहाँ पहुँचने व प्रस्थान का दिन और समय तथा भोजन ग्रहण करेंगे या नहीं, यह भी स्पष्टता से बता देवें। आधार कार्ड की छाया प्रति साथ लाएं। यह सब लिखकर व्हाट्सएप पर भेज देंगे तो श्रेष्ठ है।

आपकी सूचनाओं के होने पर आपके लिए व्यवस्था समुचित की जा सकेगी। अचानक बिना सूचना के आने पर होने वाली असुविधा व कष्ट से आप बच सकेंगे। साथ ही इससे यहाँ के कार्यकर्त्ताओं को भी अनावश्यक असुविधा से बचाने में सहायता होगी। आशा है आपका समुचित सहयोग मिल सकेगा।

सूचना हेतु सम्पर्क-

ऋषि उद्यान कार्यालय - ०१४५-२९४८६९८ परोपकारिणी सभा कार्यालय - ०१४५-२४६०१६४
व्हाट्सएप - ८८९०३१६९६१ सम्पर्क का समय - ११ से ४ बजे तक
(किसी एक सम्पर्क पर सूचना देना पर्याप्त रहेगा) निवेदक - मन्त्री

मोक्ष और उसकी प्राप्ति के साधन

पं. बालकृष्ण शर्मा

महर्षि दयानन्द की प्रथम जन्मशताब्दी फरवरी सन् १९२५ में मथुरा में मनाई गई थी। इस अवसर पर ''दयानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ'' प्रकाशित हुआ था। पण्डित बालकृष्ण शर्मा का यह महत्त्वपूर्ण लेख स्मारक ग्रन्थ से साभार पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। -सम्पादक

गताङ्क जून द्वितीय से आगे...

द्यूत में युधिष्ठिर जब द्रौपदी को हार गये, तब दुःशासन द्रौपदी के बाल पकड़कर खेंचता हुआ सभा में लाया। वहाँ उसने द्रौपदी की साड़ी खेंचकर उसकी अप्रतिष्ठा करने की चेष्टा की। द्रौपदी ने कृष्ण का स्मरण किया और कहा कि, हे सखा! आप इस समय मेरी लज्जा रखिये। यह सुनकर वहां न होने पर भी कृष्ण ने द्रौपदी को इतनी साड़ियां पहना दीं कि सभा में साड़ियों का ढेर लग गया और दुःशासन भी खेंचता हुआ थक गया। सांप्रत यह कथा कृष्ण को ईश्वर सिद्ध करने में बड़ा भारी प्रमाण समझी जाती है। परन्तु उसी महाभारत में इस कथा का उत्तर भी पाठक महाशय सुन लें। वहीं आगे महाभारत में लिखा है कि जब युधिष्ठिर अपना सर्वस्त्र हारकर भीमादि भ्राताओं और द्रौपदी के साथ वनवास के लिए वन में पहुंचे, तब द्वारका में श्रीकृष्ण को यह बात मालूम हुई। झटिति रथ पर सवार होकर वन में युधिष्ठिर के समीप पहुंचे। युधिष्ठिर को अभिवादन कर कहने लगे कि महाराज! क्या करूं जिस समय आपका कौरवों के साथ द्यूत हुआ उस समय में द्वारका में न था। द्वारका में पहुंचने पर युयुधान से मैंने आपका यह वृत्तान्त सुना और सुनते ही महादुःखी होकर आपके दर्शन के लिए इधर चला आया। अव यहाँ प्रश्न होता है कि श्रीकृष्ण सर्वज्ञ ईश्वर होने से दूर की भी बात जानते थे तो सर्वनाशकारी द्यूत से पाण्डवों को बचाने के लिए अपने आप क्यों न चले आए? श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुख से कहते हैं कि यह द्यूत का वृत्तान्त मैंने युयुधान से सुना। द्रौपदी की सैंकड़ों कोसों से बात सुनने में तो श्रीकृष्ण सर्वज्ञ रहे, परन्तु पाण्डवों के द्यूत का वृत्तान्त सुनने में अल्पज्ञ हो गये। यह परस्पर विरुद्ध बातें क्यों? भागवत में अपने गुरु सांदीपन को गुरु दक्षिणा में उनका कई दिनों से मृत हुआ पुत्र भी स्वर्ग से श्रीकृष्ण ने ला दिया, परन्तु महाभारतयुद्ध में अपने प्राणप्रिय अर्जुन के प्राणप्रिय पुत्र अभिमन्यु के, जो कि उनका भी अत्यन्त प्यारा था, मृत शरीर विद्यमान होने पर भी प्राणपक्षी को बुलाकर उसको जीवित क्यों न कर सके? युद्ध समाप्त होकर शिविरों में सोए हुए द्रौपदी के पाँच पुत्र आदि पाण्डवों के सैनिकों को रात्रि के समय अश्वत्थामा ने निर्दयता से काट डाला उस समय श्रीकृष्ण की सर्वज्ञता कहाँ गई थी? इन शंकाओं का समाधान करने वाला न तो कोई वक्ता है और न ऐसी शंकाओं का करने वाला कोई श्रोता है। यहां तक हमने 'आक्षेपोऽथ समाधानम्' अर्थात् आक्षेप उठाकर उसका समाधान करना, यह व्याख्यान का अंग पूर्ण किया।

अब हमें यह देखना है कि वेदादि शास्त्रों और उनके विद्वान् भाष्यकारों ने ईश्वर के स्वरूप का क्या निर्णय किया है। क्या ईश्वर निराकार ही है अथवा निराकार और साकार दोनों प्रकार से हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में हम यथाशक्ति युक्ति और प्रमाण से ही लिखेंगे। अनुमान १५ वर्ष व्यतीत हुए होंगे स्वामी ब्रह्मचारी रामेश्वरानन्द जी ने आर्यावर्त निवासी विद्वान् पण्डितों को आमन्त्रण देकर बम्बई में बुलाया था और बम्बई के प्रसिद्धस्थान माधव बाग में एक महती सभा कराई थी। उक्त सभा के सभापति स्व. विद्वद्वर्य शिवकुमार शास्त्री जी मुख्यासन पर विराजमान हुए थे। सभापति जब बोलने को उठे तब प्रसंगवश निराकार ईश्वर शरीर धारण करके

साकार हो सकता है, इस बात की सिद्धि के लिए उन्होंने एक युक्ति दी थी, वह आज तक हम भूले नहीं हैं। उन्होंने कहा कि जो कुम्हार दूसरों के लिए मिट्टी के घड़े बना सकता है, क्या वह अपने लिए नहीं बना सकता? यदि ईश्वर जीवों के अनेक शरीर बना सकता है तो क्या वह अपने लिए शरीर नहीं बना सकता? अर्थात् बना सकता है। यह युक्ति सुन कर सभा में खूब तालियां पीटी गईं। इस विषय में यदि कोई पूछता है कि अस्मदादिकों के शरीर कर्मायत्त अर्थात् कर्म के अधीन हैं, जैसे जिसने कर्म किये हों वैसा उसको शरीर मिलता है, तो क्या ईश्वर ने भी कोई ऐसे कर्मी किये हैं, जिनके निमित्त ईश्वर को भी भोगायतन शरीर धारण करना पड़ा? साकारवादी इसके उत्तर में कह देते हैं कि ईश्वर का शरीर स्वायत्त है, कर्मायत्त नहीं, अर्थात् अपनी इच्छा से शरीर धारण करता है, कर्म के अधीन होकर नहीं। जब ईश्वर के शरीरी होने में स्व. शिवकुमार शास्त्री जी जैसे भी समर्थ विद्वान् व्यामोह का प्राप्त हुए हैं, तब अन्य शास्त्रानभिज्ञों का तो कहना ही क्या है? इसके आगे वेदादिशास्त्र ईश्वरस्वरूप के विषय में क्या कहते हैं, इसका पाठकों को दिग्दर्शन करते हैं–

स पर्यगाच्छुक्रमकायमित्यादि.। यजु. अ. ४०/ मं. ८

जिसकी उपासना भक्त करते हैं, वह आत्मा आकाशवत् सर्वव्यापी है। वह शरीर रहित होने से व्रण नाड़ी आदि से रहित है इत्यादि। उक्त वेद मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि परमात्मा सर्वव्यापी है और वह शरीर के सब विकारों से रहित इसीलिए है कि वह निराकार है। अब जो लोग यह कहते हैं कि ईश्वर निराकार है यह तो हम भी मानते हैं, परन्तु वह कभी अपनी इच्छा से शरीरी अर्थात् साकारी भी बन जाता है, जैसे रामकृष्णादि हो गये। इस पर शास्त्र के भाष्यकार क्या कहते हैं यह भी सुनिये–

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः। ब्रह्मसूत्रेषु अ. २.२। ४०

अथ लोकदर्शनानुसारेणेश्वरस्यापि किञ्चित्करणानामायतनं शरीरं कामेन कल्प्येत, एवमपि नोपपद्यते। सशरीरत्वे हि सति संसारिवद्भोगादिप्रसंगादीश्वरस्याप्यनीश्वरत्वं प्रसज्येत।। ४०।। शांकरभाष्यम्

करणवत्० इस सूत्र के भाष्य में स्वामी शङ्कराचार्य जी लिखते हैं कि लोकदृष्टि के अनुसार ईश्वर भी अपनी इच्छा से श्रोत्रादि इन्द्रियों वाला शरीर बना सकता है, ऐसा कहें तो यह भी सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर यदि अस्मदादिवत् शरीर वाला हो जावे तो जैसे शरीर वाले संसारी, सुखदुःखादि भोगों से युक्त हो जाते हैं वैसा वह भी हो जाय। ऐसा होने पर ईश्वर फिर ईश्वर न रह सकेगा, किन्तु ईश्वर में अनीश्वरत्व प्रसंग आ जायेगा। उभयविध अर्थात् साकार और निराकार दोनों प्रकार से ईश्वर मानने में दोष दिखाते हुए सूत्रकार महर्षि व्यास और भाष्यकार स्वामी शंकराचार्य जी आगे उभयलिंगाधिकरण में लिखते हैं–

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंग सर्वत्र हि। अ. ३/२/११

तत्रोभयलिंगश्रुत्यनुग्रहादुभयलिंगमेव ब्रह्मेत्येवं प्राप्ते ब्रूमः - न तावत्स्वत एव परस्य ब्राह्मण उभगलिंगत्वमुपपद्यते। नह्येकं वस्तु स्वस् एव रूपादि विशेषोपेतं तद्विपरीतं चेत्यवधारधितुं शक्यं विरोधात्। अस्तु, तर्हि स्थानतः पृथिव्याद्युपाधियोगादिति, तदपि नोपपद्यते। न ह्युपाधियोगादप्यन्यादृशस्य वस्तुनोऽन्यादृशः स्वभाषाः संभवति। न हि स्वच्छः सन्स्फटिकोऽलक्तकाद्युपाधियोगादस्वच्छो भवति भ्रममात्रत्वादस्वच्छताभिनिवेशस्य। अतश्चान्यतर लिंगपरिग्रहेऽपि समस्तविशेषरहितं निर्विकल्पमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं न तद्विपरीतम्। सर्वत्र हि ब्रह्मास्वरूपप्रतिपादनपरेषु वाक्येषु 'अशब्दमस्पर्शमरूप भव्ययम्' (कठ. ३/१५। मुक्तिको. २/७२) इत्येवमादिवपास्तसमस्तविशेषमेव ह्योपदिश्यते।। शांकरभाष्यम्

भावार्थ- ईश्वर के साकारत्व और निराकारत्व दोनों प्रकार के स्वरूप की श्रुतियाँ देखने से ब्रह्म दोनों प्रकार का ही हो सकता है, ऐसा प्राप्त होने पर (स्वामी शंकराचार्य जो कहते हैं) हम कहते हैं कि कभी भी ब्रह्म दो प्रकार का नहीं हो सकता। कारण एक ही वस्तु साकार है और वही निराकार भी है यह परस्पर विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं। कदाचित् कोई कहे कि पृथिवी आदि उपाधियों से ब्रह्म साकार है ऐसा भी कह सकते हैं? (स्वामी शंकराचार्य जी कहते हैं) वह भी सिद्ध नहीं हो सकता। उपाधि का योग होने पर भी वस्तु का जो स्वभाव हो वह अन्य के स्वभाव जैसा हो जाय यह सम्भव नहीं। एक काँच स्वच्छ है, वह लाक्षा (महावर) के योग से मैला प्रतीत होता है, परन्तु यह देखने वाले का भ्रम होने से काँच वास्तव में मलीन है ऐसा नहीं कह सकते। इसलिए ब्रह्म वास्तव में निराकार होने पर भी जहां साकार का सा स्वरूप वर्णन आवे, वहां समस्त उपाधियों से रहित निराकार ब्रह्म ही समझना चाहिये उससे विपरीत नहीं। सर्वत्र ब्रह्म का कथन करने वाले वाक्यों में शब्द रहित, स्पर्शरहित, रूपरहित और निर्विकार ब्रह्म ही का उपदेश किया गया है। इसी विषय को पुष्ट करते हुए सूत्रों में महर्षि व्यासजी कहते हैं-

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्।। अ. ३२/१४

रूपाद्याकाररहितमेव ब्रह्मावधारयितव्यं न रूपादिमत्। कस्मात् तत्प्रधानत्वात्। 'अस्थूलमनणु.' इत्येवमादीनि वाक्यानि निष्प्रपंच ब्रह्मात्मतत्त्वप्रधानानि नार्थान्तर प्र नानीत्येतत्प्रतिष्ठापितम्। तस्मादेवं जातीयकेषु वाक्येषु यथाश्रुतं निराकारमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्।

शांकरभाष्यम्

भावार्थ- रूपादि आकाररहित ही ब्रह्म हो सकता है रूपवाला नहीं यह निश्चय है, क्योंकि वेदान्तों में जहां स्थूलतारहित आदि ब्रह्म के विशेषण आते हैं, उन वाक्यों में संसार के धर्म से पृथक् ब्रह्मात्मतत्त्व का ही ग्रहण मुख्य है। इसलिए ईश्वर स्थूल नहीं, अणु नहीं इत्यादि वेदान्तवाक्यों में निराकार ब्रह्म का ही ग्रहण करना चाहिये।

कई महाशय शंका करते हैं कि यदि ब्रह्म निराकार ही है तो मनुष्य की बुद्धि उसको प्राप्त नहीं कर सकती। यह शंका नई नहीं है। भगवद्गीता का शांकरभाष्य देखने से मालूम होता है कि आद्य स्वामी शंकराचार्य के सामने भी यह शंका उपस्थित थी। गीता के श्लोक पर वे लिखते हैं कि-

सिद्धि प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।

भग. अ. १८। श्लो. ५०

केचित्तु पण्डितम्मन्या निराकारत्वादात्मवस्तु नोपैति बुद्धिस्तो दुःसाध्यमसम्यग्शाननिष्ठेत्याहुः। सत्यमेवम्, गुरु संप्रदायरहितानाम्, अश्रुतवेदान्तानाम्, अत्यन्तवहिर्विषयासक्तबुद्धीनाम्, सम्यक्प्रमाणेष्वकृतश्रमाणाम्। शां.। भा.

भगवद्गीता के उपर्युक्त श्लोक का स्वामी शंकराचार्य जी ने बहुत ही विस्तृत भाष्य किया है। उसमें पूर्वपक्ष की शंका करके उसका उन्होंने बहुत ही मनोहर समाधान दिया है। वे लिखते हैं कि कई पण्डितम्मन्य (वास्तव में जो पण्डित न होकर अपने आप को पण्डित मानने वाले) लोग कहते हैं कि परमात्मा निराकार होने से मनुष्य की बुद्धि उसको प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिये परमात्मा का ज्ञान होना दुःसाध्य है। इसके उत्तर में स्वामी शंकराचार्य जी कहते हैं, जो लोग गुरु सम्प्रदाय से रहित है अर्थात् **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्, समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।** इस उपनिषद् के अनुसार वेदज्ञ तथा ब्रह्म में जिसकी पूर्ण निष्ठा हो ऐसे गुरु परम्परा से जो रहित हैं, किन्तु नाममात्र के वेदान्त के ज्ञान से शून्य गुरु से जिन्होंने अपने कान फुंकवाये हों, जिन्होंने कभी वेदान्त न सुना हो, जो बाह्य शब्दादि सांसारिक विषयों में अत्यन्त आसक्त हों और किसी वस्तु के स्वरूप का

ठीक निर्णय कराने वाले प्रत्यक्षादि न्यायोक्त प्रमाणों में जिन्होंने कुछ भी परिश्रम न किया हो ऐसे मनुष्य यह कह दें कि आत्मवस्तु को निराकार होने से मनुष्य की बुद्धि प्राप्त नहीं कर सकती? अर्थात् अज्ञानियों के लिए ऐसा कह देना कोई आश्चर्य नहीं।

निराकार आत्मा बुद्धि के लिए अप्राप्य है, ऐसा कहने वाले स्वामी शंकराचार्य जी ने चार प्रकार के मनुष्य ठहराए हैं। उनमें से तीसरे प्रकार के '**अत्यन्तवहिर्विषयासक्तबुद्धि**' मनुष्यों को लिए कुछ विचार करना चाहिये। बम्बई में छः छः मंजिल के मकान बहुत हैं। कोई मनुष्य छठी मंजिल पर चढ़कर पानी का नल फेर कर पानी लेना चाहे; परन्तु नीचे के पांचों मंजिल के पांचों पानी के नल खोल दिये गये हों तो छठी मञ्जिल पर कभी पानी चढ़ नहीं सकता। पांचों तो क्या परन्तु एक भी नल खुला हो तो भी छठी मंजिल पर पानी चढ़ नहीं सकता, तब पांचों नल खुले हों तो कहना ही क्या है? स्वामी शंकराचार्य जी के कथन पर उक्त दृष्टान्त अक्षरशः घट जाता है। जिनकी बुद्धि शब्द स्पर्शादि सांसारिक विषयों में ही दिन-रात लगी हुई होती है, उन विषयों से क्षण भर भी अपनी बुद्धि को खैंचकर और एकान्त में बैठकर परमात्मा तत्त्व का विचार करने का अवकाश ही नहीं मिलता वे कह सकते हैं कि बुद्धि निराकार ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकती। यदि एक विषय में भी बुद्धि रूपी प्रवाह वेग से बह रहा हो तो भी बुद्धि आत्मतत्त्व का विचार नहीं कर सकती, तब पांचों विषयों में वेग के साथ बहने वाला बुद्धि का प्रवाह परमात्मतत्त्व का विचार करने में कैसे समर्थ हो सकता है? स्वामी शंकराचार्य भी वेदान्त दर्शन के 'जन्माद्यस्य यतः'। १०/१२ सूत्र के भाष्य में लिखते हैं कि-

स्वभावतो विषविषयाणीन्द्रियाणि न ब्रह्मविषयाणि।

शां. भा.

मनुष्य की इन्द्रियां स्वभाव से ही शब्दादि विषयों को ग्रहण करने वाली हैं अर्थात् विषयों को ग्रहण करना ही उनका विषय है, ब्रह्मतत्त्व को ग्रहण करने का उनका विषय ही नहीं है यदि यह बात सर्वतन्त्र सिद्धान्तानुसार है तो विषयासक्त इन्द्रियां निर्विषय, निराकार ईश्वर को जानने में समर्थ कभी नहीं हो सकतीं। उसको जानने का साधन कठोपनिषद् में लिखा है कि-

परांचि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।

कठ. अ. ६/१

परमेश्वर ने इन्द्रियां विषयों को ग्रहण करने के लिए ही बनाई हैं। इसीलिए वे विषयों पर ही गिरती हैं, अन्तरात्मा को नहीं देख सकतीं। लक्षों में कोई एक ध्यानशील पुरुष मोक्ष की इच्छा करता हुआ परमात्मा को अपने अन्दर ही देखता है। किस साधन से देखता है? इसका उत्तर देते हैं-

दृश्यते त्वग्र्या बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।

कठ. अ. १/१२

परमात्मा को तो सूक्ष्मदर्शी विद्वान् अपनी सूक्ष्म बुद्धि से ही देखते हैं, आंखों से नहीं। जो लोग परमात्मा को उभयविध मानते हैं वे शास्त्रों को देखे बिना ही मानते हैं। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस तैत्तिरीयोपनिषद् के वाक्य पर भाष्य करते हुए स्वामी शंकराचार्य जी ने लिखा है कि यहां ब्रह्म का सत्य विशेषण इसलिए दिया है कि 'यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं' न व्यभिचरति तत्सत्यम्। यद्रूपेण निश्चितं यद्रूपं व्यभिचरदनृतमित्युच्यते' अर्थात् ब्रह्म निराकार अज, सर्वव्यापकादि विशेषण विशिष्ट जब माना गया है, तथा उससे विपरीत साकारादि माना जावे तो वह सत्य विशेषण वाला नहीं हो सकता, किन्तु अमृत हो जायेगा। ईश्वर को दोनों प्रकार का मान कर आज स्वामी शंकराचार्य जी के अनुयायी ही उनका अनादर कर रहे हैं। ब्रह्म के स्वरूप का ही जिनको अभी निश्चय नहीं, तब उसकी प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है। किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के समीप दो शिष्य ईश्वर का उपदेश लेने

के लिए गये। गुरु ने उनको उपदेश करने के पूर्व दोनों के हाथों में लकड़ी के दो पिंजरे दिये जिनमें लकड़ी के दो तोते बैठाए हुए थे। उक्त पिंजरे देकर दोनों शिष्यों को कहा कि तुम दोनों दोनों दिशाओं में जाकर इन पिंजरों को जलाकर शीघ्र मेरे समीप लौट आओ, परन्तु यह बात ध्यान में रखो कि जहां कोई भी पिंजरा जलाते समय न देख सके ऐसे स्थान पर ही जलाना। दोनों ही शिष्य गुरु के उक्त कथनानुसार पृथक्-पृथक् पर्वतों की गुहा में पहुंचे। उन गुहाओं में इतना अंधेरा था कि इनका भी शरीर इनको नहीं दीख पड़ता था दोनों ने यही सोचा कि यही स्थान गुरु के कथनानुसार है, क्योंकि यहाँ मनुष्य, पशु-पक्षी आदि कोई भी इस जलाने की क्रिया को नहीं देख सकता है। इसलिए यही स्थान ठीक है, ऐसा निश्चयकर दोनों शिष्य पिंजरे जलाने के लिए प्रवृत्त हुए और उनमें से एक ने पिंजरा जला भी दिया। दूसरे ने सोचा कि यह कि यहां मनुष्य, पशु-पक्षी आदि कोई नहीं देख सकता, यह ठीक है, परन्तु सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक परमात्मा तो सर्वत्र है। वह न देख सके ऐसा कोई भी स्थान न होनेसे गुरु के कथनानुसार इस पिंजरे को मैं जला नहीं सकता। ऐसा कहकर पिंजरे को हाथ में लेकर वह गुरु के समीप लौट आया। पिंजरा जला कर आया हुआ शिष्य आनन्दित होकर अपने मन में कहने लगा कि गुरुजी मुझे ही प्रथम उपदेश देंगे, परन्तु हुआ इससे विपरीत। गुरु ने पिंजरा पीछे लाने वाले को बड़े ही आदर से कहा कि बेटा! तुम पिंजरा पीछे क्यों लौटा लाए? उसने पिंजरा लौटा लाने का उत्तर कह सुनाया। गुरु जी ने कहा कि हे शिष्य! तुम ही प्रथम ईश्वर प्राप्ति का उपदेश ग्रहण करने के अधिकारी हो। इस पिंजरा जलाने वाले को अभी यही ज्ञान नहीं है कि ईश्वर कैसा और कहाँ है। उक्त दोनों बातों का ज्ञान होने पर ही यह ईश्वर प्राप्ति का अधिकारी हो सकता है अन्यथा नहीं। उक्त दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि वेदान्तप्रतिपाद्य ईश्वर के स्वरूप ज्ञान से अनभिज्ञ लोग जो ईश्वर प्राप्ति के लिए यत्रतत्र दौड़ रहे हैं वे ब्रह्मनिष्ठ गुरु की दृष्टि में ईश्वर प्राप्ति का उपदेश ग्रहण करने के ही योग्य नहीं तब उनको ईश्वर प्राप्ति कहां?

यहाँ तक हमने शंका समाधानपुरस्सर वेदान्त प्रतिपाद्य ईश्वर का स्वरूप संक्षेप से कथन कर दिया। अब जिस वस्तु की प्राप्ति मनुष्य करना चाहता है, वह वस्तु कहां प्राप्त हो सकती है, इस दूसरी बात का विचार करना है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में लिखा है कि-

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः।

यजु. अ. ४० म. ५

स बालाभ्यन्तरो शमः।। उपनिषद्

ईश वास्यमिद ꣳ सर्वम्।। यजु. अ. ४०/१

परमात्मा इस सम्पूर्ण संसार के अंदर और बाहर विद्यमान है, वह अजन्मा ईश्वर सब के अंदर बाहर व्याप्त हो रहा है 'वस निवासे' और 'वस आच्छादने' इन दोनों धातुओं से 'वास्य' शब्द बना है। परमेश्वर इस जगत् में निवास करता है और बाहर भी उससे यह सब जगत् आच्छादित है। अर्थात् जगत् के अंदर और बाहर व्याप्त है। यहां यह शंका होती है कि यदि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है तो हमारे जीवात्मा में भी है फिर उसकी प्राप्ति कैसी? अर्थात् नित्य प्राप्त वस्तु की प्राप्ति ही क्या? इस शंका का समाधान यह है कि अन्तर तीन प्रकार का होता है। पहिला देशकृत अन्तर, दूसरा कालकृत अन्तर और तीसरा अज्ञानकृत अन्तर। बम्बई और दिल्ली का देशकृत अन्तर है। हजार माईल रेल पर सवार होकर बम्बई निवासी मनुष्य चले तब उसको दिल्ली को प्राप्ति हो सकती है अन्यथा नहीं। यह देशकृत अन्तर हुआ। दूसरा अन्तर समयकृत है। एक किसान भूमि में बीज बोता है। उसके पौधे (अंकुर) की प्राप्ति होने में कुछ समय की आवश्यकता है। उतना समय जाने पर पौधा प्रकट हो जायेगा और बोने वाले किसान को उसकी प्राप्ति हो जायेगी, यह कालकृत अन्तर हुआ। अब तीसरा अज्ञानकृत

अन्तर है। एक मनुष्य सौ रुपयों का नोट जेब में डालकर स्टेशन पर गया। मास्टर से उसने टिकिट माँगा। मास्टर ने कहा कि बीस रुपये निकालो। इतना सुनते ही उक्त मनुष्य कहने लगा कि अरे मैं तो सौ का नोट मकान में भूल आया। ऐसा कहकर घर की ओर दौड़ा। यहां नोट मनुष्य की जेब ही होने से उसकी उसे प्राप्ति थी, परन्तु नोट मेरी जेब में हैं ऐसा उसको ज्ञान न होने से वह मनुष्य व्यर्थ मकान तक दौड़ता गया। यह तीसरा अज्ञानकृत अन्तर हुआ। अब हमको यह देखना है कि उक्त तीन प्रकार के अन्तरों में ईश्वर का और मनुष्य का कौन सा अन्तर है। ईश्वर देशकालादि से अनवच्छिन्न होने से उसका और मनुष्य का देश और काल का अन्तर नहीं हो सकता। उपर्युक्त वेदोपनिषदों के प्रमाणों से जब ईश्वर सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है तब उसका और मनुष्य का स्थानकृत अन्तर न रहा। परन्तु आजकल उस ईश्वर की प्राप्ति के लिए जो लोग जगन्नाथ द्वारका, हरिद्वार, रामेश्वर, काशी आदि को दौड़ रहे हैं वे ऊपर कहे हुए नोट के अज्ञान से मकान पर दौड़ने वाले मनुष्य के समान भ्रान्त हैं यह निस्सन्देह है। 'यस्तु त्रिषु कालेषु न बाधते तत्सत्' जो वर्तमान, भूत और भविष्यत् इन तीनों कालों में विद्यमान है इसलिए परमात्मा का नाम सत् है। ईश्वर सब स्थानों में और सब कालों में विद्यमान होने से उसका और हमारा स्थानकृत और कालकृत अन्तर नहीं हो सकता, यह निर्विवाद सिद्ध हुआ। हाँ तीसरा ईश्वर और मनुष्यों का अज्ञानकृत अन्तर अवश्य है। इसीलिए अज्ञानवश मनुष्य अपना अमूल्य समय और धन व्यर्थ व्यय करके इधर-उधर दौड़ रहे हैं। जिस दिन जिज्ञासु मनुष्य को गुरु तथा शास्त्र से सर्वत्र और सर्वदा विद्यमान रहने वाले परमेश्वर का ज्ञान हो आता है तब उसी समय मनुष्य इतस्ततः दौड़ना छोड़ कर निर्भ्रान्त हो जाता है।

इस निबन्ध के आरम्भ में अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में हमने अपेक्षित चार बातें लिखी हैं। उनमें से ईश्वर वस्तु को प्राप्ति के लिए दो बातें हमने लिख दीं। ईश्वर प्रेप्सु मनुष्य के लिए ईश्वर का स्वरूप कैसा है, यह लिखकर वह वस्तु कहां मिल सकती है यह दो बातें हमने संक्षेप से यहां तक लिखीं, अब तीसरी बात यह कि जैसे बेरों का स्वरूप और वे कहां मिलते हैं इतना मालूम होने पर उनको खरीदने के लिए अर्थात् प्राप्त करने के लिए धन रूप साधन की आवश्यकता होती है वैसे ही ईश्वर निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप है और सबों के अन्दर और बाहर आकाशवत् व्यापक है, अब प्रसंगानुसार उसकी प्राप्ति के साधनों पर विचार करना है।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा;
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

यह मुण्डकोपनिषद् का श्लोकार्ध है। इसमें ईश्वर को प्राप्त करने का पहला साधन उपनिषत्कार ने सत्य लिखा है। 'सत्य' यह विशेषण वाणी का और किसी वस्तु का भी हो सकता है। 'सत्यं वद' इस वाक्य में 'सत्यं' भाषण, वाणी का विशेषण है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस वाक्य में 'सत्य' परमात्मवस्तु का विशेषण है। उपर्युक्त श्लोकार्थ में सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य यह चार साधन ईश्वर प्राप्ति के लिए लिखे हैं। श्लोकार्थ के अन्त में जो 'नित्य' पद लिखा है उससे उपनिषत्कार को सत्यादि की कदाचित्कता अभीष्ट नहीं, अर्थात् ईश्वर प्राप्ति की वा मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करने वाला मनुष्य कभी सत्य बोले अथवा कभी सत्य सुने और कभी असत्य भी बोले वा सुने यह नहीं हो सकता। किन्तु नित्य सत्य, नित्य तप, नित्य सम्यग् ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य इन नैत्यक चारों साधनों से ही परमात्म वस्तु प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं। नित्य सत्य यह प्रथम साधन है। 'यथार्थाभिवानं सत्यम्' जो वस्तु अथवा जो बात जैसी हो, उसको उसी प्रकार कहना यह सत्य कहाता है। स्वामी शंकराचार्य जी ने गीताभाष्य में सत्य की व्याख्या बहुत ही ठीक की है। वे लिखते हैं-

यथादृष्टस्य यथाश्रुतस्य चात्मानुभवस्य परबुद्धिसंक्रान्तये तथैवोच्चार्यमाणा वाक् सत्यम्।।

शांकर भाष्यम्

क्रमशः

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु
खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक,
कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

आवश्यक सूचना

परोपकारी के सुधि पाठकों से निवेदन है कि कृपया अपना नाम व पते के साथ दूरभाष संख्या भी अंकित करावें ताकि परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रमों से सम्बन्धित सूचनाएँ आपको दूरभाष पर मैसेज के माध्यम से भेजी जा सकें।

परोपकारिणी सभा दूरभाष संख्या - ८८९०३१६९६१

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

अजमेर में अक्टूबर में प्रस्तावित महर्षि दयानन्द सरस्वती के द्वि जन्म शताब्दी समारोह की तैयारी बैठक को संबोधित करते स्वामी ओमानन्द सरस्वती। मंचासीन परोपकारिणी सभा के प्रधान श्री ओम् मुनि, मंत्री श्री कन्हैयालाल आर्य, श्री सतीश चड्ढा महामंत्री आर्य केन्द्रिय सभा नई दिल्ली, महर्षि दयानन्द निर्वाण स्मारक न्यास के प्रधान डॉक्टर श्रीगोपाल बाहेती तथा दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री विनय आर्य।

ताकत वतन की हम से है - अजमेर के ऋषि उद्यान में परोपकारिणी सभा की ओर से आयोजित आर्य वीरांगना शिविर में लाठी चलाने का प्रशिक्षण लेतीं बालिकाएं।

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक प्रेषण : २९-३० जून २०२४ आर.एन.आई. ३९५९/५९

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

की

१०० वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

अन्तर्राष्ट्रीय ऋषि मेला

१८-२० अक्टूबर २०२४

सादर आमन्त्रण

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,